न वेदं वेद नोवेद सवेद्यं वेदयो वेद
वभीवेदः ज्जगद्वेदः समाहोक्तं मयावेदात ।

रहस्य लव लहरी द्वितीय भाग

अर्थात्

ईशोपनिषत् की मत प्रदर्शनी

संस्कृत और भाषा टीका

जिस में कणाद, गौत्तम, न्याय, सांख्य, योग, सांख्यविज्ञान भिक्षु, वेदान्तविज्ञान भिक्षु, शङ्कराचार्य, मीमांसक, माध्व, रामानुज, बल्लभ, भट्टभास्कर, निम्बादित्य, पाशुपत, शैव, माहेश्वर, शांभव, शाक्त, साहित्य, दयानन्द, समीक्षक, मतसें जुदां २ अर्थ लिखकर, दयानन्द मतकी समीक्षा और समीक्षा का मन्त्रार्थ भी लिखा है पहले भाग का परिशिष्ट इसमेंहै बीजमन्त्रों द्वारार्थ का भी तरीका है ॥

जिसे

हरिदत्त, शर्म्मा त्रिवेदी ने निर्माणकर

पहले भाग सहित अपने व्ययसे

नेशनल यंत्रालय अमृतसर में

बाबू हरजी मल के प्रबन्ध से प्रकाशित किया ।

प्रथमबार १००० सं० १९७२, सं० १९१५ मूल्य ईशतिहार में दिया है ।

नोट—दूसरा भाग एक से लेकर ७२ सफे तक पंजाब अकोनोमीकल प्रेस लाहौर में और ७३ से १३६ तक नेशनल प्रेस अमृतसर में छपा । और इस की राजिष्टरी भी हुई है

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ततो भूय इवते य उ विद्यायांरताः ॥ १ ॥

अन्धमिति वैशेषिकमते अन्धतमोऽन्धतामिस्त्रंनरकंतेपतन्ति मर्त्यलोकेऽपि महामोहगर्त्तपतिताउलूकादियोनिगताइव भवन्ति ते अधिकतराऽज्ञानिनइवतेयेऽविद्यामज्ञानंदेहात्मवादलक्षण मुपासतेस्वीकुर्वते चार्वाकादिवद्धर्मादिरहिताऽनात्मज्ञादिनाऽस्तिकाऽज्ञानिनोनरकयोग्यास्ततोऽप्यधिकंते येविद्यायां ज्ञाने आत्मनिरताबौद्धाःक्षणिक विज्ञानं गुणमेवात्मानमुपासतेतेऽपि चार्वाकाइवपरमात्मन आत्मनइवास्वीकर्त्तारः स्वात्मनाशनिरताएवनेधर्मा दितोऽग्रेऽपिकिमुइहैवस्वम् खतइतिभावः॥१

यह मन्त्र यहां पहले है इस का मायिकनिषेध प्रसङ्ग मिल रहा है किसी पुस्तक में पोछे यह है पहले संभूतिमुपासते ऐसे पद घटित मन्त्र है शाङ्करादि व्याख्या निषेध प्रसङ्ग भेद से प्रामाणिक टीका के अनादर से वह नहीं लिखा गया वैशेषिक मत में इस का अर्थ यह होगा कि वे लोग अन्धतामिस्र नरक में मर कर पड़ते हैं मनुष्य लोक में भी महामोह रूप गड्ढे में पड़ते हैं अथवा उल्लू आदि योनि में पड़ते हैं जो अज्ञानि देहात्मवाद रूप अविद्याकी उपासना करने वाले चार्वाक आदि धर्माचारादि हीन अनात्मज्ञ नास्तिक लोग हैं और जो क्षणिक विज्ञान में लगे बौद्ध आदि है उसी को आत्मा मान रहे हैं और कर्मकाण्ड वेदवाद छोड़ बैठे हैं आत्मनाश में ही लगे हैं वो तो उन से भी अधिक नरक योग्य है जिन मूढों को अपने नाश का भी पता नहीं है कि क्षणिकवादसे आत्मा के नाश में हमारा भी नाश होरहा है॥१॥

गौतम मतमें इस का ऐसा अर्थ होगा कि अन्धतामिस्र नरकगामि वे होते हैं जो आत्मादि १२ प्रमेयों की अविद्या में मिथ्या ज्ञान में

गौतममतेअन्धतमः प्रविशन्ति येप्रमेया विद्यायांरतामिथ्याज्ञाने-दुःखमाजिनोनारकास्ते ततोऽप्यधिकंरागादिनोऽसदाचरणंरताःकेते ये विद्यःयांज्ञानेनिरतावयंज्ञानमात्मानमिच्छामइतिवदन्तोऽनात्मज्ञास्तेन-हिक्षणिकविज्ञानं बुद्धिरूपमात्मा इवस्यैवात्मनोनाशप्रसङ्गादिदोषादिति सर्वस्थलोकस्य मिथ्याज्ञानपति तत्वेऽपिबौद्धानां निष्कृष्यतत: कथनं ततोप्यधिकनारकविशेषद्योतनायेतिभावः।२।

उभयोच्छिष्टतर्कमतेअन्धनरकंते प्रविशन्ति नारका अतितमा-मज्ञानिनस्तेयेऽविद्यामज्ञानमुपासते चार्वाकाश्योजडदेहवादिनःततो-धिकंतेक्षणिक ज्ञानवादनिरता उभयोरात्मपरमात्म धर्मकर्मविमुखत्वात् नित्यज्ञानवादं सांख्यवादमपिवेदान्तमेते असद्वादमाहुरितिभावः।३।

रत होने से रागादि विशिष्टनिन्दित आचरण कर रहे हैं वो यहां भी मनुष्य लोक में जन्म रूप दुःख और नीच योनि असत्कर्म के फल को पायेंगे और जो क्षणिक विज्ञानवादि बौद्ध हैं वो केवल वृत्ति ज्ञान जिसे माया नाशवादि वेदान्ति कहते हैं उस मायावाद क्षणिक ज्ञान में रत हैं इससे आत्म धर्मकर्मनाशोद्यत वो लोग तो उससे भी ज्यादह नारक हैं ॥ २ ॥

उभयोच्छिष्ट तार्किक मत में यह अर्थ है कि अज्ञान के उपासक देहात्मवादि चार्वाक आदि जड़ देहादि तो नरक के पातन योग्य हैं और आत्म-परमात्मा धर्म कर्म से बिमुख हैं इसी तरह के क्षणिक ज्ञान शून्यवादि आदि बौद्धादि भी हैं वे तो उनसे भी ज्यादह नारकी हैं पहले आत्मायथार्थ नहीं किन्तु देह तो मानते हैं यह तो अपने आत्मा की और नित्यज्ञान वेदान्त आदिकों को भी शून्यबताय रहे हैं आत्म हिंसा रत हैं ॥ ३ ॥

दयानन्दमते अन्धतमोऽज्ञानं प्रविशन्ति मूर्खाहितेउलूकादिजडादियोनियोग्यास्ते ये ज्ञानं विद्यानयत्र तथाभूतमूर्त्यादि पाषाणीयमुपासते ततोप्यधिकंते आधुनिक वेदान्तिनस्ते ये उ इति वितर्केविद्यायां ज्ञानमात्रे वयं ज्ञानिनइति मत्वात्यक्तवेदवादा: सर्वं मिथ्या आहुरिति संपादयितुं शक्यते आशय इति ।

अत्रसमीक्षाऽतोन्यदार्त्तमित्यादि वेदवादान्प्रमाणयन्त: सर्व मिथ्यावादं स्वात्मानमपिमिथ्या बाधप्रतियोगिनंबाधसमानाधिकरणंवदन्तीति वेदान्तिविमुखाएवान्धाश्चार्वाकादयआमुष्मिकधर्मशून्याअपिआपादयितुशक्यन्ते इत्यत्वाद्यनुमानादिकंचात्रबहुतरमनुकूलमर्च प्राचंततलिकताश्चनेमृच्छिकाश्चमेयहेन कल्पन्ताम् इत्यादिवादाश्चबहुशस्तुहिभुतं

दयानन्द के मत में इस का ऐसा अर्थ भी हो सकता है अन्धतम याने अज्ञान में जा पड़े हैं वे लोग मूर्ख उलू आदि योनि में जाने योग्य है अर्थात् जड़ मूर्त्ति पूजा आदि लोगों के ठगने वाली पोप लीला को चला रहे और कर रहे हैं उससे भी ज्यादह दुर्दशा के लायक वो हैं जो सब वैदिक कर्मों को छोड़ कर हम ब्रह्म हैं ऐसे वेदान्ति बन कर सब को मिथ्या बताने वाले हैं ॥ ४ ॥

इस में समीक्षा करनी चाहिये अन्तोन्यदार्त्तम् ब्रह्म से भिन्न मिथ्या है ऐसे २ वेदों का अर्थ कहे रहे सकल शास्त्र व्यवहार प्रामाणिक बाधसमानाधिकरण देहादि सत्कर्म वेदविहित आचरण करने वाले कट्टर शास्त्र वादि माया नाश वादि मायावाद बौद्धादि मजहब के और देहात्मवादि परलोक निषधक चार्वाक दयानन्दि आदि मनघडन्त किसी मन्त्र के टुकड़े के अर्थ के धोखे से अपने को वैदिक सिद्धान्त वादि वेदवाक्यों से कैसे बुरे और नरक योग्य कहे जाएं

गर्भसद्मिमंयम प्रस्तरमित्याद्याःप्रस्तरस्य मृदादेश्चलिङ्गमूर्त्यादि पूजा

बोधकामन्त्रादेहादेरपिपार्थिवत्वात्पाषाणादेश्वसर्वं त्रिधपूजायाःकाष्ठा

दि इधनरूपाया अपिजडसा धारण्येनैवसत्वासमन्तरापूजाप्रकाराभा-

वाच्चतद्विरोधीनायमर्थोऽस्त्यन्त समञ्जसःइत्यादिसर्वव्यापकत्वखण्ड

नस्यास्यार्थस्यस्वसिद्धान्तविरोधोबहुविधोद्वेषभवितस्या पादयितुंश

क्यइतिध्येयंतथोक्त्याभूयाःसर्वव्यापकत्वज्ञानेनारकाइतिसमोक्ष्यार्थात्।५

साङ्ख्यमतेऽन्धतमः महामोहंतामसं प्रविशन्ति

तेऽज्ञानमुपासते मायावादं ततोधिकंते चिन्मात्रालङ्कैरतारस्त्यादि नाना-

धर्म्मारोपणकुशला:प्रकृतिपुरुषभेदज्ञानस्यमुक्तिप्रयोजकत्वादित्याशयः।६

नियोग के बगैर संपूर्ण वेद ढूंढ कर सत्यार्थप्रकाश में सत्कर्म हो

कोई नहीं लिखा तो परलोक के आनन्द देने वाला हो परलोक तो

मानाहो जन्मान्तरके लायक कोई काम भो इष्टापूर्त्त लिखा नहीं विद्या

ध्ययनादि से हो कहीं धर्म कहैं होम तक भी हवा शुद्धि ऐहिक फल

ही काम सीखा उन्हें तो अलबत्ता आगे को न देखने से अन्धपद के

अर्थ में ला सकते हैं वेदान्त के उपदेश में सर्वब्रह्मातिरिक्तत्वेनाभिमतं

मिथ्यादृशि फलव्याप्यत्वात् इत्यादि अनुमान भी अनुकूल हो सकते

हैं जिन्हें बौद्ध तक भी प्रमाण कोटि में मनाने पर मान जायें अर्चत

प्रार्चत ईश्वर की पूजा करो अच्छी तरह गन्ध आदि जो पदार्थ खुद

सेवन करते हो उन से बढ़ कर पूजा करो सिकताश्च मे मृत्तिकाश्च मे

यज्ञेनकल्पन्ताम्। अगर तस्वीर बनाना च हो तो जैसे नीलग्रीवाःशि-

तिकण्ठा नीली गर्दन वाली प्रतिमा कहीं नहीं मट्टी वगैरह यज्ञ याने

देव पूजामें लाओ इत्यादि श्रुति में मूर्त्ति बनाना मट्टीजातीयपुष्पगन्ध-

नैवेद्यादि पार्थिवों से पूजा करना पुरुषाकार होना और स्तुहिश्रुतंगर्त-

विज्ञानभिक्षुमते अन्धमज्ञानं तमस्तामसंप्रविशन्तियेऽज्ञानंमाया वादमुपासते आश्रिता: ततोभूयइवाधिकं तमस्ते ये ज्ञानं ब्रह्माहु:प्रति- बिम्बस्यैव तत्वाद्सक्तात्वात्कर्माभोग्यमाहुश्चेतिभाव: ॥ ७ ॥

योगमतेऽन्धतमः प्रविशन्ति अज्ञानंये वृत्तिमेव प्राकृतिकामुपा- श्रिता:क्षणिकवादिनोनसमाहितास्ते ततोधिकंतेयेवृत्तिसाक्ष्यमाश्रिता- आत्मानि विद्यायांपरकायादिप्रवेशलक्षणायांसिद्धि पादे विश्रान्ता इति भावः ॥ ८ ॥

सद योनि में बैठने वाले लिङ्ग चाम मट्टी आदि स्वरूप होना आदि परमात्मा का लिखा गन्ध दानादि नैवेद्य दानादि रुद्रस्तुति अथर्व में भी सुस्पष्ट है और देहमात्र तो पाषाण तुल्य पार्थिव पदार्थ जड़ कोटि का ही काष्ठादि हवन आदि भी पृथिवी तेज संयोग रूप जड़ पूजा कल्प ही है और मूर्ति आदि जड़ पूजा के बिना और प्रकार भी कोई पूजा नहीं वृत्तिपर्यन्त माया पर्यन्त जड़ कोटिही है अपने भी जड़ पूजो पदेशक विष्टा की हड्डी में जड़ वृत्तिमायिक प्राकृत पदार्थ के पूजन ध्यानवादि होकर मूर्त्ति पूजा के निषेधके लिये ऐसा अर्थ करना कभी नहीं हो सकता।

यह तो विष्टा की हड्डी में मानकर उत्तम प्रतिष्ठापितवेद प्रमाण का,अनादरकर सर्व व्यापकत्व अपने कहे हुए को खण्डन करने वाला परमात्म विरोधी अपने सर्व व्यापकत्व सिद्धान्त से विरुद्ध द्वेष से ही भरा अर्थ करना कभी उचित नहीं किन्तु वेदान्त ज्ञान शून्य पर लोकान्ध अज्ञानी मूर्त्ति पूजा आदि स्मार्त्तवेद मूल इष्टा पूर्त्त कर्म के खण्डन कर्म के नरक योग्य है उस बढ़ कर भी नार की है जो सर्व व्यापकत्व ज्ञानरत हो अपने सिद्धान्त विरुद्ध मूर्त्ति में परमात्मा

मीमांसकमते अन्धंतमोऽज्ञानान्नरकंप्रविशन्ति येऽविद्यां वेदाज्ञान मुपाश्रिता इततोभूयइववतेये विद्यायां ज्ञानेरताज्ञानमात्रमात्मानमपिविदित्वा कर्मपराङ्मुखाःचार्वाकादयो नास्तिका आत्मज्ञान निरताःफलासंभववादिन आक्षिपन्ति कर्मजालबन्धरूपफलत्वाद्‌ाधुनिकवेदान्ति नइतउभयेऽज्ञानिनो नरकयोग्या इति भावः ॥ ९ ॥

नहीं वह जड़ है वहां पूजा से परमात्मा प्रसन्न नहीं दयानन्द के वाम के गुन्थले पर पुष्प चढ़ाने से ही ऐसा क्योंकि विरुद्ध वेद तो व्याघात वादि है ऐसा दयानन्दि मत खण्डनार्थं भी मन्त्रकाकर सकते है वेद तो भूत भावि भविष्यदुक्ता है ॥ ५ ॥

साङ्ख्य मत में इस मन्त्र का ऐसा अर्थ होगा अन्धतामिस्र मोह भेद तामस वृत्ति को वो प्राप्त हैं जो अज्ञान मायावाद (बौद्धक्षणिक ज्ञान) की उपासना करते हैं और चिन्मात्र को असङ्ग समझ कर भी उस निर्लेपमें अन्यथा कोटि मिथ्या दृष्टि माया नाशवाद से अभिमत्त होकर शरीर पोषण सत् कर्म छोड़ मजा उड़ाने में लग जाते हैं जैसे कहा कि कलौ वेदान्तिनः सर्वे शिश्नोदर परायणाः कलिके वेदान्ति सब शास्त्र सत्कर्म पद्धति मर्यादा छोड़ केवल पेट भरना व्यभिचार करना इतने के करने वाले ही होंगे वो तो पहले से भी बढ कर अन्धतामिस्रमोह भेदताम सवृत्ति के धर्मारोप में पड़ने से उसके अनुकूल दण्ड भोगेंगे ॥ ६ ॥

विज्ञान भिक्षु के मत में भी अर्थ होगा कि अन्ध अज्ञान तामस वृत्ति के वे हैं आज भी वैसे होंगे जो मायावाद में पड़े हैं उस से अधिक वो तामस है जो ज्ञान रूप आत्मा को धर्म्मारोप से बद्ध कहते हैं क्योंकि बद्धधर्मि प्रतिबिम्बतोविति धर्मि से जुदा ही है

शां० भा० अत्राद्येनमन्त्रेण सर्वैषणा परित्यागेन ज्ञाननिष्ठोक्ता प्रथमोवेदार्थः ईशावास्य मिदं सर्वं मागृधः कस्यस्विद्धनम् इत्यज्ञानांजिजीविषूणांज्ञाननिष्ठासंभवे कुर्वन्नेवेहकर्माणिजिजीविषेदिति कर्मनिष्ठोक्ता द्वितीयो वेदार्थः अनयोश्चनिष्ठयोर्विभागो मन्त्रप्रदर्शितयो र्बृहदारण्यकेऽपिप्रदर्शितः सोऽकामयतजाया मेस्यादित्यादिना अज्ञस्यकामिनः कर्माणीति मनएवास्याऽऽत्मा वाग्जायेत्यादि वचनात् अज्ञत्वं

और जो मिथ्या सभ असङ्ग आत्मा बता कर माया निषेधवाद में लग सब सत्कर्माचरण छोड़ केवल कुकर्म रत है वह तो उससे भी तामस वृत्ति में पड़ने से तदनुकूल दण्ड भागी हैं ॥ ७ ॥

योगके मतमें इसका अर्थ है कि अन्धतामिस्र तामसवृत्तिको प्राप्त होंगे भी तत्स्वरूप हो उनको असंप्रज्ञात समाधि नहीं होसकता जो क्षणिक विज्ञानवादि विक्षिप्त वृत्ति के हैं और उनसे बढ़कर वह हैं जो विद्या पर काय प्रवेशादि जान कर भी उस सिद्धि पाद में फंस कर उसी वृत्ति सारूप्यमें लग गये मुक्तियोग्य असंप्रज्ञातसमाधि उनका सिद्धि विघ्न से नहीं होता ॥ ८ ॥

मीमांसक मत में इसका अर्थ ऐसा होगा कि वे अन्ध तम नरक गामी हैं जो वेद विद्या न मानने वाले न जानने वाले हैं उनसे जियादा वह है जो वेद के कर्म ज्ञान आत्म ज्ञान को पाकर भी फलासम्भव आदि परलोकासम्भव हिंसा आदि दोषों से वैदिक सत्कर्म छोड़ चार्वाक जैन दयानन्दी आदि नास्तिकमत प्रविष्ट होरहे हैं ऐसे ही असङ्ग आत्मा और मिथ्या वेदान्तवाद पकड़ सत्कर्म छोड़ कुकर्म पकडे बैठे हैं आज कलके वेदान्त बाबा पन्थी कहाते हैं ॥ ९ ॥

इस मन्त्र के शाङ्कर भाष्य को अपनी टीका में किये अर्थ के अनुवाद भावार्थ लिखते हैं कि इस उपनिषद् में पहिले मन्त्र से

कामित्वंच कर्मनिष्ठस्य निश्चितमवगम्यते तथाच तत्फलं सन्तान-सर्गस्तेष्वात्मभावेनाऽऽत्मस्वरूपावस्थानं जायाद्येषणात्रय संन्यासेन वा-त्मविदां कर्मनिष्ठाप्रातिकूल्यनात्मस्वरूपेनाऽऽत्मस्वरूप निष्ठैव दर्शिता किं प्रजया करिष्यामो येषांनोयमात्माऽयंलोक इत्यादिनायेतु ज्ञाननिष्ठाः संन्यासिनस्तेभ्योऽसुर्यानामत इत्यादिनाऽविद्वन्निन्दाद्वारेणात्मनोयाथात्म्यं सपर्यगादित्येतदन्तैर्मन्त्रै रुपदिष्टम् तेह्यत्राधिकृतानकर्मिनइति

ज्ञानियों को पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा का बाध सामानाधिकरण्यत होते हुए अपनी २ प्रकृति के अनुसार अन्तःकरण में उन्मूलन क्रम से और अज्ञानियों को कहीं युगान्तर में विविदिषा संन्यास आदि से परित्याग से ज्ञान निष्ठा कही यह पहिले मन्त्र का भाव हुआ अज्ञानियों को यानि लक्ष्यरूप ज्ञानसे भिन्नत्वंपद वाच्यार्थों जोसप्तमभूमिका जहांतक व्युत्थान होसकता है छः भूमिकातक व्युत्थान होसका है उनको व्युत्थानकाल में मिथ्यात्व हक् स्वहक् ज्ञान निष्ठाके असम्भवसे उसकाल मेंसत्कर्माचरणकहा दूसरे मन्त्रमें सत्कर्माचरणसेदीर्घायुहो ज्ञान निष्ठामें प्रयत्न या उसकी जीवन्मुक्त भूमिका रहना कलीतर में विद्वत्संन्यास में उसकेआश्रम कर्म करना यह दूसरे मन्त्र का भाव है इन दोनों प्रवृत्ति चक्र पतित निवृत्तिचक्रातिन कलीतर सन्यासी और सप्तम भूमिका उस से भिन्न भूमिका वाले ज्ञानी अज्ञानी को ज्ञान निष्ठा, और कर्म निष्ठका विभाग किया समाधि और व्युत्थान के भेद से बृहदारण्यक में भी एषणा अनङ्ग भाव लक्ष्य में दृढ करने को वाक्य में क्रमोन्मूलन प्रकार बताने से निवृत्ति चक्र बताया कि अगरउ से इच्छा हो कि मझे पुत्र स्त्री आदि हो तो मन आदि में वैसी याचना करे जिस से वाह्य वाग् आदि कामना से आकुलता हटकर विद्यमान कामना की असङ्ग दृष्टि दृढ हो न्यूनता होजाय या उस को वैसे संकल्प की बाधि

तथाच श्वेताश्वतराणां मन्त्रोपनिषदि अत्याश्रमिभ्यः परमंपवित्रंप्रोवाच सम्यगृषिसंघजुष्टमित्यादि विभज्योक्तम् ये नु कर्मिणः कर्मनिष्ठाः कर्मकुर्वन्तपत्रजि जोविषवस्तेभ्य इदमुच्यते अन्धंतमइति कथं पुनरेवमवगम्यते नतु सर्वेषामित्युच्यते अकामिनः साध्यसाधन भेदोपमर्द्दैन यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः तत्रकोमोहः कःशोकः एकत्व मनुपश्यतः यदाऽत्मैकत्वविज्ञानं तन्नकेनचित्कर्मणा ज्ञानान्तरेण वाह्यमूढः समुच्चिचीषति इहतुसमुच्चिचीषयाऽविद्वदादिनिन्दा क्रियते । तत्रच यस्य येन समुच्चयः संभवति न्यायतः शास्त्रतोवातदिहोच्यते यद्दैवंवित्तं देवताविषयंज्ञानं कर्मसंबन्धित्वेनोपन्यस्तं न परमात्मज्ञानम् ।

दृढ़ता हो आत्मा से सत्सङ्ग दृष्टि अन्तःकरण धर्म से हो रहती है। उसका फल सप्तान्नसर्ग भी वहां बताया है एक अन्न जो खाते हैं,वह अन्न दो देवताओं के हुत प्रहुत हविः पशु अथवा दर्श और पौर्णमास मन वाकप्राण तीन एक पशु के लिये बनाया यह सात अन्न सर्ग हैं, यह सम जन्मान्तर से पञ्चम्यामा हुता वापः पुरुष वचसो भवन्तीति पहली आहुति अग्नि में दूसरी चन्द्रमण्डल में तीसरी वृष्टि द्वारा वृक्षादि में चौथी भोजनादि से रसादि शुक्रान्त होना पचमी आहुति में स्त्री योनि में पड पर गर्भ में पुरुष हो निकलना इसरीति से सत्कर्म श्रद्धा आदि पुरुष के साथ पुरुष पन कराने वाले होते हैं उसरीति से या देव भाव में इस सप्तान्न सर्ग का लाभ और वैसी भावना से शान्ति की वृद्धि यही बृहदारण्यक का तात्पर्य है, जायाएषणा का त्याग असङ्गआत्मदर्शन से अन्तः संन्यास और कलियुग से भिन्न युगमें आन्तर वाह्य दोनों प्रकार में से जो होलके उस संन्यास से आत्मवेत्ता को कर्म निष्ठा व्युत्थानदशा में होने वाली भी वाध

विषया देवलोक इति पृथक् फलश्रवणात् तयो र्ज्ञानकर्मणोरि ह कैका-
नुष्ठाननिन्दासमुच्चियचोषया निन्दापरैवैकैकस्य पृथक् फलश्रवणात्विं-
द्यया देवलोकः न तत्रदक्षिणायन्ति कर्मणा पितृलोकः इति नहिशास्त्र-
विहितं किंचिदकर्त्तव्यतामियात् तत्रान्धं तमोऽदर्शनात्मकं तमः प्रवि-
शन्ति के येऽविद्या विद्याया अन्या अविद्या तांकर्मेत्यर्थः कर्मणोविद्यावि-
रोधित्वात् तामविद्यामग्निहोत्रादि लक्षणामेव केवलामुपासते तत्पराः
सन्तोऽनुतिष्ठन्तीत्यभिप्रायः ततस्तस्मादन्धात्मकात्तमसो भूयइव बहु-
तरमेवतेतमः प्रविशन्तिकेकर्महित्वा येउ येतुविद्यायामेव देवताज्ञानपव-
रता अभिरतास्तत्राऽवान्तर फलभेदं विद्या कर्मणोःसमुच्चयकारणमाह
न्यथा फलवदफलवतोः संनिहितयोरङ्गाङ्गितैवस्यादित्यर्थः ।

दृष्टि (प्राति कूल्य) से सकमिथ्या के निषेध का अधिष्ठान आत्म
स्वरूपनिष्ठा बताई क्या हम प्रजासे करेंगे जिन का यह आत्मा ही
सम है पुत्र, मित्र, स्त्री आदि है अर्थात् अपरिच्छिन्न सर्व व्यापक
आत्मा हम सभ से होते हुए भी इनके असङ्ग हो हैं ऐसी श्रुति आगे
भी यहां स्फुट है, जो ज्ञान निष्ठावाले अन्तरङ्ग संन्यासो वा बहिरङ्ग-
कलीतर संन्यासी हैं उनको असुर्यानाम ३ मन्त्र से, लेकर सपर्यगा तू
तक अविद्वान् की निन्दा कर यथार्थ स्वरूप बताया वे ही यहां
अधिकारी हैं नकि मिथ्यात्वज्ञान रहित कामना वाले वे तो कामवृक्ष
और जिज्ञासायोग्य भी नहीं इसो से श्वेताश्वतर में भी परम पवित्र
आश्रम कर्म में मिथ्यात्व दृष्टि से करते हुए भी उनके असङ्गदशि
लोगों को ही ऋषि समुदाय सहित उपदेश किया ऐसा लिखा है जो
कर्मिकर्मनिष्ठाअसङ्गदृष्टि रहित हो कर कर्मबद्ध कर्म करने वाले हैं
उनको निन्दा के लिये यह मन्त्र है अकामो (कामनाकेसङ्ग कोमिथ्या-

परित्यागेनेति ज्ञानिनांबाधसामानाधिकरण्येन सर्वैषणानां समुन्मूलक्रमतारतम्येन अज्ञानिनांचकत्रचिद्युगादौसंन्यासेनचेत्यर्थः अज्ञानमुपलक्षणं प्रवृत्तिचक्रपतितानां वक्तव्यान्तरस्य बहुधा प्रागुक्तत्वाद्वितरापत्तेश्च नानन्दगिर्यादिछिद्रगवेषणप्रयासोविधीयतेज्ञाननिष्ठा संभवे सप्तमभूमिकादि संन्यासाद्यसंभवे अज्ञत्वंचलक्ष्यरूपज्ञानान्यमात्रत्वम् वचनादिति मनएवास्येति, एषणात्रयोन्मूलनचक्रमपति तस्य बहुतरोपायेष्वलाभे संतोषार्थं च मन आदौ ज्ञायादिभाव इहोपदिश्यते कयाचित्कल्पनया कल्पनान्तरत्यागसंपादनाय संतोषायचेति ध्येयम् सप्तान्नसर्गं इति एकं साधारणमन्नं यदिदमद्यते द्वेदेवानांहुतप्रहुते दर्शपौर्ण-

---

देखने वाले को साध्यसाधनक्रिया काण्ड होते हुए का भी मिथ्यात्व दर्शन आत्मा में निषेध रूप होने से आत्मामात्र ही भस होगया उसी को किसी कर्म के साथ मिलकर मुक्ति हेतुता नहीं होसकती बाध्यमान अबाध्यमानद्वामेव मुक्ति कारण तच्छेदकता पर्यक्ष्यनुयो गिजावच्छेदकद्वित्व नहीं होसकता और अन्यथा सिद्धि होने से कारणाता भी नहीं होसकती और यहां दो मन्त्रों से समुच्चय कहना है इस से मुक्ति हेतु ज्ञान के साथ समुच्चय नहीं कर्म हेतु ज्ञान के साथ कर्म समुच्चय के लीये देवतादि ज्ञान रहित कर्म की निन्दा पहले ९ मन्त्र से करते हैं, उसी का युक्ति और शास्त्र से समुच्चय होसकता है विद्ययादेव लोकः कर्मणापितृ लोकः देवता ज्ञानसे देव लोक होता है, कर्म से पितृलोक होता है ऐसा फल भी श्रुतिमें है इकले२ की निन्दा और मिल कर देवता ज्ञान और कर्म का फल कीर्त्तन है क्योंकि आत्माशास्त्रविहितअन्तः करणादि कर्तृत्वाश्रयोंके कर्त्तव्यकोटिमें कभी नहीं हो सकता तो पहले मन्त्रका अर्थ हुआ कि इकले अग्नि होत्रादि

मासौवात्रीष्यस्यैभोगसाधनानि मनोवक्प्राणलक्षणानि पश्वर्थ कम्
मति सप्तान्नसर्ग इदं चत्यागक्रम मध्यवर्ति कल्पनायाः फलंतत्तद्रूपेण
भावेतन्मयात्मबुद्धया तत्रशान्त्यवाप्तिः तन्मध्यमृतस्य च सप्तान्नभा-
वादि जन्मान्तर दैवभावानन्तरं पञ्चम्यामाहुता वापः पुरुषवचसोभ-
वन्तीत्यादिच तत्रच पूर्वभाविना प्रकर्षेण तत्संस्कारान्तपरिपाकं याव-
त्सप्तमभूमि तदाहात्मावस्थानमितितच्चशान्तिः संसारश्च संन्यासेन-
चेति अनासङ्गेन युगान्तरीय संन्यासाश्रमेणचेत्यर्थः कर्मनिष्ठा प्राति-
कूल्येन वाधसामानाधिकरण्येन तत्प्रतियोगितयाऽनुष्ठानेनहेयबुद्धये-
त्यर्थः स्वरूपनिष्ठेत्वलक्ष्यनित्यमुक्त स्वरूपनिष्ठैव हेयतामेवाभिव्यङ्क्तुं
प्रशंसयितुं चोपादेयं हेयादिकं दर्शयति किमिति सन्यासिनइतिअना-

कर्म देवता ज्ञान रहित की उपासना करते हैं वह अज्ञानात्मतमः में
प्रविष्ट है उससे भी ज्यादह वे हैं, जो देवता ज्ञान में ही समुच्चय के
अवान्तर फलको मुख्य उसी का फल समझते हैं इसका सत्कर्म हीन
दुराचारी संन्यास पक्ष पाती ज्ञानी को अन्त करणादि को भी अधि-
कारातीत कह कर उदरलिङ्ग परायणनिन्दा भी अर्थ होता है शङ्कर-
मत से परन्तु शङ्करजी ने जिसका आगे समुच्चय करना है वह अर्थ
लिखा वह मत तो शिश्नोदरं भरिसंन्यासादि तो शङ्कराचार्य दुष्ट
कोटि में मानते हैं पञ्चदशी में भी लिखा है विनिज्ञातस्वतत्वस्य
यथेष्टाचरणंयदि शुनांतत्वदर्शींचवकोभेदोऽशुचिभक्षणे तत्वज्ञानी अगर
शास्त्र विरुद्ध दुराचरण करें ताकुत्तों से उनका क्या फरक हुआ ।११॥

माध्व मत में इस मन्त्र का ऐसा अर्थ हुआ कि अन्धतामिस्र
नरक को जाते हैं जो अविद्यामायिकक्षणिक विज्ञानमायावादप केवल
प्रकत्यादि व हरिसे भिन्न देवता के उपासक हैं दीक्षित नहीं और

सङ्गिनः संन्यासाश्रमवन्तश्च युगान्तरीयाः अत्राधिकृता इति वाच्याभि प्रायेण विद्वत्संन्यासोऽपि युगान्तरीयः लक्ष्यस्वरूपेतु नाधिकारिभावले- शोऽपि नविधौनिषेधे तदेवस्फुटयति अत्याश्रमिभ्य इति संन्यासस्पा- च्याश्रमत्वेन ततोऽप्यतीतावाच्यातीतास्तएवचत्वार्थ्य कोटौलक्ष्यनिष्ठा- अपि ये तु सप्ततभूमिप्राग्वर्त्तिनो व्यवहारस्यव्युत्थानकालिकस्यान्ततो भोजनाच्छादन लक्षणस्य क्रियमाणत्वान्नातोताजीवन्मुक्तकोटिस्तुशा- स्त्रकृताज्ञानोत्तर चतुर्थभूमिकातोदीयतेसमाधिकालेतथाभावात् अत्या श्रमिरूपलक्ष्यमात्र कोटिस्तुअपरिहार्यःसार्वदिक सार्वभौमसमाधिस्थि- तिमन्तरानसं भावयितुमपिपार्यतेकिमुदातुंपरमहंसपदज्ञैःशास्त्रविद्भिः

मूर्ख कुकर्मी हैं जो इकले ज्ञान परायणहोमायानाशत्रादि हो कर कुकर्म या सदसद दोनों आचरण छोड़ अशिष्टा प्रतिषिद्धमात्र म परायणभी होवे भी उनसे ज्यादह ही तामिस्रभागी है यह माध्वअङ्गा- ङ्गि भाव से मुक्तिहेतुज्ञानकर्म समुच्चय मानते हैं इस से उनके मत से ऐसा अर्थ किया गया और वैष्णव मात्र अनन्य भक्ति आजकल के प्रचार मुताबिक और देवता न मानना और उनकी निन्दा करने को कहते हैं आचार्य मत तो नहीं काशकुशावलम्बतो है इस उनके मतसे उविद्यायां ऐसा छेद कर शिव भक्त उन भक्ति हीनों से भी ज्यादह तामस है ऐसा भी अर्थ हो सकता है ॥ १२ ॥

भट्टभास्कर के मत में ऐसा अर्थ होगा कि केवल भेद ज्ञान रूप अविद्या में लगे हैं, और मूर्ख जो कर्म हीन है हरिभक्ति रहित हैं और अन्यदेवताभक्त हैं वे अज्ञानतमोवृत्तिकदके हैं मूर्ख की अपेक्षा से ज्ञानि को डबल दोष होना चाहिये यह भेदा भेद ज्ञान कर्म हरिभक्ति धर्माचारण वैदिकतान्त्रिक के अनुकूल यह अर्थ हुआ ॥ ३ ॥

सामानाधिकरण्येनकत्राचित्कोलो केगौणोत्याश्रमिप्रयोग इतिदिक् अका-
मिनो विध्यधिकार समुच्चयं सप्तमभूमिकावतः शङ्क्यमानविध्युल्लङ्घन
प्रत्यवाय परिहारायत्नो कुर्वन्ति शास्त्रविदः त्यागक्रमपतितस्यापि
तत्प्रागवर्त्तिलक्ष्ये तद्भावस्तेन समाहितकालिक कर्मत्याग प्रत्यवाया-
भावेपि फलम् देवताज्ञानकर्मज्ञानसमुच्चिचीषया प्रत्येक निन्दातेनया-
यत्कर्म व्युत्थानकाले वा ब्रह्माज्ञानिनोवाऽश्रुतवेदान्ततात्पर्यस्य तस्य
सर्वस्य देवताज्ञानेन सहैव कर्मकार्यमिदमेतादृशध्यानवद्देवकर्ममन्त्रा-
दीतिज्ञेयं श्यात्वैवचकर्माचरणीयं समसमुच्चयेनेत्यभिप्रायः कर्त्तव्यता-
निषेधद्वयेन देवकर्म पितृकर्म त्यागस्तुनकत्रापि लिखितः विनिर्ज्ञातस्व-
तत्वस्य यथेष्टाचरणं यदि शुनांतत्वदृशांचैव कोभेदोऽशुचिभक्षणे इत्यु-

---

निम्बादित्य के मत में अर्थ ऐसा होगा कि जो मूर्ख हो कर
धर्म कर्म रहित और हरिदीक्षा रहित है और भेद ज्ञानी है और
प्रकृति ब्रह्मवादि और मायिक क्षणिक ज्ञान आत्मा मानने वाले माया-
वादि बौद्धादि और देवतान्तर भक्त है और सब से बडा भगवान्
को नहीं जानते और संसार सत्यत्व ज्ञान से मोह में पडे, वे विवर्त्त
भेदा भेद ज्ञान रहित होने से अन्धताम से वृत्ति में पडे, हैं उन से
भी ज्यादह के हैं जो अभद ज्ञान होते भी हरिभक्ति हीन सदाचरण
वैदिक स्मार्त्त छोड़ बैठ गेरू लेलिये ये भी हरि भक्तिविवर्त्त भेदाभेद
ज्ञान सम प्रधान भाव से कर्मज्ञान समुच्चयमानते हैं आज कल के
प्रचार मुताबिक इन के चेले अनन्यभक्ति भी वैसी ही मानते हैं जो
वास्तव में वैष्ण वलक्षण सर्व भूतदया विष्णु नारायण पद्धतिमद्यादि
सहितदेवीरहस्यादि में क्रमसे लिखी स्खलना से विरुद्ध है इन्ही के
अनुकूल यह अर्थ किया रामानुज के मत में इसका ऐसा अर्थ होगा

केर्दुराचारिणानिमन्यमतस्य समुच्चिचीषाऽभावाच्छङ्करेणचतन्निन्दाऽवसरलभ्यैवेतिनालेखीति भावः ॥ ११ ॥

माध्वमतेऽन्धंतमःप्रविशन्ति नरकादौयेऽविद्यां मायावादं तन्नाशावादं,केवलप्रकृत्यादि देवान्तरंचोपासतेऽसमाश्रिता अज्ञाश्च ततोभूयस्ते केवल ज्ञानकाण्ड परायण ब्रह्ममन्या हतमोन्धःप्रविशन्ति सम प्राधान्येन वा हरिभक्ति कर्मज्ञानयोरङ्गाङ्गितया वा समुच्चिचीषुणेदमुच्यते वैष्णव मते उ विद्यापदेनशिवविद्याऽप्यर्थः प्रत्याख्य ते भगवताऽवेदेनेतिभावः ।१२।

भट्टभास्करमतेपि भेदज्ञानमविद्यांयेसमुपाश्रिता अज्ञाश्च धर्मकर्म रहिता स्तेऽन्धंतमः प्रविशन्ति हरिभक्ति विहीनास्तदज्ञादेवतान्त-

---

कि जो भेद ज्ञान रूप अज्ञान में पडे हैं और भिन्न देवतामे लगे अवैष्णव हैं, और विष्णु भगवान् को सभ से बडा नहीं जानते और मूर्ख हो कर सदाचरण धर्म कर्म से हीन है और मायिक क्षणिक विज्ञान मायावाद को पकडे हैं, वे सभ अन्धतामिस्र के लायक तामसवृत्त में पडे हैं, उन से ज्यादह वो हैं, जो कर्म रहित हो केवल ज्ञान निष्ठ अभेद वादि त्रिदण्डोतर संन्यासी आदि है ये भी विशिष्टाद्वैतज्ञान हरि भक्तिसमाश्रय लेकर रामदुलारा कर्मज्ञान का समुच्चय का उपदेश देते है और उसी चाल की अनन्यभक्ति को जड उडाते है इस से उसी के अनुकूल अर्थ किया गया ॥ १५ ॥

वल्लभमत में इस मन्त्र का ऐसा अर्थ होगा कि अविद्या जड वाद प्राकृत सृष्टि वाद को पकडे साङ्ख्य और अज्ञ हो कर धर्म कर्म रहित पुष्टि पुष्टि की भक्ति मुताबिक शरण मन्त्र जिनने नहीं लिया भगवान् कृष्ण गोस्वामी गोपीवल्लभ के मत छोड अथवा भेदाभेद में पडे वे सभ अज्ञानी और भक्ति काण्ड के न जानने वाले नास्तिकादि सभ

दीयाश्च केवलाभेदवादिनो विद्यायां रताश्तेऽनततोऽप्यधिकमिति मूर्खा-
र्थांपेक्षय । विज्ञस्याधिक दोषा दधीतशास्त्रत्वादिति भेदाभेद समुच्चि-
चीषया कर्मज्ञानयोश्च हरिभक्ति धर्माचरण भेदाभेद ज्ञानस्य समुच्चि-
चीषुणाच भगवता वेदेनोदमुपदिश्यते इतिभावः ॥ १३ ॥

निम्बादित्यमते अविद्या मज्ञानं समाश्रिताये मूर्खाधर्म कर्म
रहिता भेदज्ञान मात्र परायणाश्च प्रकृत्यादि मायावादादिसं श्रित्य-
अनन्यदेवता भक्ताश्च सर्वोत्कृष्ट हरिज्ञान रहिता सत्यत्व ज्ञानेनमो
हम ज्ञान माश्रिताश्च विवर्त ज्ञान रहिताश्चान्धं तमः प्रविशन्तिते
ततो भूयस्ते तमो ये विद्याम भेदमेव संश्रितास्त्यक्त सकल कर्माणो
व्रजन्त्य न्धंतम इति हरिभक्ति धर्मा चरण विवर्त्त भेदा भेदज्ञान
समुच्चयेच्छु ना भगवता वेदेनो पदिश्यते इतिभावः ॥ १४ ॥

अन्धतमामिस्र नरक के लायक है उस से ज्यादह वो है जो निर्धम
निर्विशेष जान कर सभ सद्धर्मत्याग रांडमरीघरसंपदनासी मूंड-
मडाए भये संन्यासी हैं, इनकी पुष्टि २ भक्तिका तत्व पीछे इन्हीं की
पुस्तका नुसार लिखा है उसका शुद्धा द्वितीय ज्ञान वैदिक तान्त्रि-
कस्मार्त्तधर्म का आचार्यों के और आज कल के लेख मुताबिक कुछ
थोडा वेदानु सरण और आज कल के प्रचार को पुष्टि २ से अनन्य
भक्ति जड उडाने वाली भक्तिका समुच्चय यह मानते हैं अज्ञाश्रि
भावसे उसके अनुकूल भी त्रिकालदर्शी वेद भगवान् का सत्या सत्य
उपदेश का खोलने वाला अर्थ हुआ ॥ १६ ॥

नकुलीशपशुपत और शैव मत में इस का अर्थ ऐसा होगा कि
अन्धतामिस्र के लायक वे हैं जो श्याने विष्णु की विद्या अनन्यभक्ति

रामानुजमते ये खलु अविद्या मुपासते भेदमेव हरौ तत्वंवता परास्त दुरूकर्षानक्मि ज्ञामूर्खाश्च धर्मं कर्म रहिता मायावाद मज्ञान मुपाश्रिताश्च तेन्ध तमः प्रविशन्ति ततो भूयस्तुते कर्म रहिता: केवल ज्ञान निष्ठा अभेदगदिन: खंन्यासाद्या श्रमिणं मन्यास्तमो विशन्ति इति हरिभक्ति ज्ञान कर्मसमूच्चियचो णाविशिष्टाद्वैतरूप भेदाभेद भेदा भेद समूच्चियचो षूणा चोपदिश्यते भगवता वेदे नेति भाव: ॥ १५ ॥

वल्लभमते अविद्या माश्रिता जड़वाद मज्ञाश्च धर्म कर्मण: अशा रणाश्च हरे: कृष्णस्य गोपि कावल्लभस्य भेदं च समाश्रिता भेदा भेदनिष्ठाऽनभिज्ञा श्चताना वितण्डां समाश्रिता: प्रविशत्यन्ध तमो नरकं नीच गतिकरं ततो भयस्ते ये केवल विवर्त्त निर्धर्मज्ञा नेनत्यक्त

आज कल की में लगे हैं, और मूर्ख हो कर धर्म कर्म हीन वा प्रकृति वादि सांख्य व क्षणिक विज्ञानवादि मायावादि बौद्ध है उससे भी ज्यादह नरक चे हैं जो अभेद जान कर भी शिश्नोदरपारायण सदा चरण सत्कर्म वैदिकस्मर्त्त विमुख है यह ज्ञान कर्म का समुच्चियचोषा से वेद भगवान् कह गये शैव भेदवादि औरनकली भेदवादि है शब्द भी दयानन्द के मत में भी इसका एक और अर्थ हो सकता है क्योंकि वैसा नास्तिक मत तो परस्पर मर्माणि आपस के भेद खोल फुट मेवा के प्रसाद में ही निकला करते है, उस समीक्षक को प्रवृत्ति भी इसी के हटाने के लिये है, तो उस की शैववैष्णव-समीक्षाके पढने वालों के अनुसार यह अर्थ हुआकि अयाने हरि विद्या उपास जड मूर्ति मानने वाले सभ प्रकारक खाखी वल्लभ आदि वैष्णव पोप अन्धतामस वृत्ति पडे, वैसो उल्लू आदि योनि के लायक है उनसे ज्यादह वो है जो अविचारत शैव लिङ्ग को पजक आदि भी

सकल कर्माणो ब्रह्ममन्यासंन्या सिनः शूद्रा द्वितीय कृष्ण शरण पुष्टि पुष्टिभक्ति कर्म ज्ञान समुच्चयार्थं माह वेदोयम् ॥ १६ ॥

नकुलीशपाशुपत मतेऽन्धत मस्ते विशन्तिये अविद्या मुपासते (अ) स्य विष्णो विंद्यां न शिवविद्यो पासका मूर्खादयो जडरताः साकृष्याः प्राकृति काश्च सद्धर्म कर्मा चारहीनाः प्रविशन्त्यन्धत मस्ततो भयस्ते ये विद्यायामभेदेरताः संन्यासादि पथेन शास्त्रवि- हित कर्मत्याग पराइति पशुपति भक्तिर्भेदेनै तन्मते ऽभेदेन शैवमते स्वामिनो ज्ञान कर्म समुच्चयायेद् मुच्यते वेदेनेति भावः ॥ १७ ॥

दयानन्द मते परस्पर मनन्य भक्तिमन्योन्य वष्णव शैवादि द्वेष मालोच्य परस्परस्य मर्माणीति नीत्याममर्माणि विज्ञाय अविद्यो

दयानन्द हरिहर ब्रह्माशक्ति गुरु विष्णु आदि नाम लेने वाले तक वेसा तामस बताता है ॥ १८ ॥

अब इसका तो समीक्षर्थि साथ ही साथ है कि परमात्मा के नाम और वेदों में लिखे स्वयंभोव्युत्पत्ति करता है कि परमात्मा के नाम हैं और अपने आप गुरुभक्तिआचार्यदेव भक्ति लिखता है अपनेही गुरुवे नमसे चिढ़ता है, और शैववैष्णव निन्दा मात्र का तत्व भी कोई प्रमाण सिद्ध नहीं इससे इस अज्ञान में पड़े मूर्ख हैं वे अन्धतामिस्र नरक लायक है। दयानन्दि आदि उनसे भी ज्यादह वो है कि त्रियायां सत्यां पढ़ कर भी ययानन्द की अन्यमिच्छास्वरथेनापवेगेन जगाय- नाकुलं प्रति आदि की चोरी देख और विना भगिनीमात्रादि विचार के व्यभिचार के कुकर्म समर्थन मन घडन्त के बगैर और कोई पार- लौकिक धर्म सत्यार्थ प्रकाश में नहीं लिखा यह समझ कर भी एसा

पासकहरि परायणा जड मूर्त्तिरताश्च विद्यायां शिव विद्यायां रताः शिवत्स्यु पास का महाविद्यारताश्च हरिहर शक्ति परायणा गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णु रित्या दिनाहर येनमः गुरुत्वेन मदत्याद्युपासनरताश्च सर्वे नरकमधः पात ब्रजन्ति इत्यर्थःस्फुटः संपादयितुं शक्यते ॥ १८ ॥

सर्वाणि परमात्मनामानिपरमात्मनो मन्त्रेषुतथाकीर्त्यं मानत्वात् एतेषामेवनाम्नां वेदे परमात्म नामत्वेन प्रसिद्धेः स्वीकेश्च भावार्थस्य भगवदुक्तस्यत्वदा ज्ञानुसारिभिः स्वीकारे एतन्नाम विद्वेषस्यानुचित त्वादिकं पर्यन्तं युक्ताश्ये तिसमीक्ष्यसुधीभिः मूर्ख पण्डितानां दया नन्द विद्या शास्त्राज्ञानिनांना रक्तत्वार्थश्रा क्षरलभ्य एवेतिदिक् माहेश्वरमते अविद्या मदृष्ट मात्रं मज्ञानरूपं मूर्खतांचो पासते धर्म

उसी दयानन्द आदि के हठ को लिये जाते है यह अर्थ भी वेद भगवान् त्रिकालदर्शी अपने अक्षर से कह गये ॥ १९ ॥

माहेश्वर मत में इसका ऐसा अर्थ होगा कि अदृष्ट मात्र को पकड व मूर्ख हो कर धर्म कर्म रहित और अविष्णु की विद्या आदि में लगे शिव निन्दक और प्रकृति क्षणिक ज्ञान आत्मा कहने वाले माया वादि बौद्ध सभ नरक गामि हैं अविद्योपासक इन सभ से ज्यादह वो हैं जो केवल ज्ञान में अभि मत्त हो असदाचार मात्र परायण हुए और शिव कारणता अविद्यापाकर भी रताहृष्ट छोड़ स्वतन्त्र उसी में रत हुए विना अहष्टके उसे कारण मान बैठे भक्ति की पूंछ भी न पकडी अपने धर्मानुसार अदृष्ट पैदा भी न किया पक्षपात शरण हो याशभुक सदा शिव बन बैठ ॥ २० ॥

प्रत्यभिज्ञादार्शनिकशाम्भवमत में ऐसा अर्थ होगा कि वे नार को है जो वैष्णव आदि भक्ति विद्या में लगे हैं और मूर्ख होकर सत्

कर्म रहिता अहश्वविद्या मुपासते येऽपि विष्णु भक्ता अन्येऽपि च देव- तान्तर परा जडवादाश्च अन्धनरक गामिनः स्तेततो भूयस्ते पतन्ति नरके ये विद्यां केवल ज्ञान मुपाश्रितास्त्यक्त सर्वकर्माणः अदृष्टमन्त- राशिविज्ञान कारणतावादाः स्वतन्त्रेश्वर निमित्तो पादानादि वादाश्च शिवभक्ति धर्म कर्मा चरणा दृष्टानुसारी श्वरकारणता भेदज्ञान प्रशं सार्थं इदमुच्यते वेदेनेति भावः ॥ २० ॥

प्रत्यभिज्ञादार्शनि कमते अन्धन्तमः प्रविशन्ति तेनरकं येऽविद्या- मस्य विद्या विष्णुभक्ति मुपाश्रिताः मूर्खाइव धर्मा चरण हीना देव- तान्तर भक्ताः संवित् कारणस्यन्द कार्या भेद ज्ञान शून्या जडवाद निरताश्चा न भिज्ञास्स्वरूपस्य मायावाद बौद्धाश्च ततो भयस्तेतमः

धर्माचरण हान है और निन्दा कोट के देवता की भक्ति करते वैसे हैं और कारणा संचित काकार्यस्यन्कसे अभेद नहीं जानते और जड प्रकाश ब्रह्म मानन वाल और माया बादि बौद्ध क्योंकि ये सब आत्म स्वरूप के न जानन वाले बोध के उद्यम रूप भैरव से शून्य है और उन स भा ज्यादह वा ह जो केवल शिव विद्या अनन्य भक्ति आज कल को के झगडे मे शक्ति निन्दा आदि में लगे वा ज्ञानि अपने को मान कर सब शास्त्री काम छोड़ बैठे सत्कर्मसे वीतराग और वेदान्त छोड कर कुकर्मादि परायण है शिव शक्ति भैरव प्रत्यभिज्ञा दीक्षा पूर्वक भक्ति पञ्च देवता भैरव महा विद्याओं को के साथ ज्ञान कर्म समुच्चय भुक्ति मुक्ति हेतु समप्राधान्य भाव से मानते हैं और शिव- शक्त्यात्मा स्वछन्द प्रधान मानते हैं इस से इन के अनुसार ऐसा अर्थ हुआ शाक्त मत में अर्थ है कि वे अन्धतमिस्त्र लायक है शक्तिनि- न्दक शक्ति हीन विष्णु के उपासक हैं और जो मूर्ख होकर धर्म कर्म

प्रविशन्ति ये ज्ञानितेये ऽविद्यां शक्ति द्वेषेण केवल शिवपरा ज्ञानमात्र शरणत्वेनत्यक्त धर्माश्च नित्य संविदः शिवशक्त्यात्मकस्या भेद-प्रत्यभि ज्ञानशिव शक्ति भक्ति शाम्भव कर्म ज्ञान समुच्चिचीषयेदमु-च्यते वेदेनेतिभावः ॥ २१ ॥

शाक्तमतेऽन्धंतमः प्रविशन्ति ये अविद्या मुपासते विष्णु समा-श्रिताः मूर्खाश्च धर्म कर्म रहिता जड प्रकृत्यादिवादपरा देवी भक्ति-विहीन देवतान्तरपराश्च ततो भूयस्ते तमः प्रविशन्ति ये ऽविद्यायां शिव विद्यायांरताः अज्ञान मात्र परायणत्वेन संन्या संमन्यास्त्यक्त सर्व-धर्मा चरणा इति सर्वो निन्दावादः देवी भक्तिज्ञान कर्म समुच्चय जगदम्बा निमित्त कारणता ज्ञान समुच्चिचीषयोच्यतेवेदेन भगवते तिभावः ॥ २३ ॥

रहित हैं अथवा जो जड प्रकृति ब्रह्मात्मा मान रहे हैं देवी भक्ति रहित देवतान्तर की उपासन मायावादि बौद्ध हैं ना कर रहे हैं और उन में भी ज्यादह वो हैं जो शैव शक्ति निन्दक हैं अथवा आत्मनित्य ज्ञान समझ मायानिषेध वादित भी सद्धर्म छोड़ असदाचरण कर रहे हैं देवी भक्ति ज्ञान कर्म समुच्चय जगदम्बा निमित्त कारणता ज्ञान समुच्चीचोवा अनन्य भक्ति आज कल की का झगड़ा मानने वालों के अनुसार त्रिकालदर्शी वेद का अर्थ हुआ ॥ २२ ॥

साहित्य मत में इस का ऐसा अर्थ है कि वे प्रत्यक्ष नारक हैं जो रसा स्वाद विमुख होन वाला अज्ञाना दृश्यश्रव्य हरि भजनादि नाटक काव्य दर्शन नापसन्द करते हैं और उसे गन्दा कर शोका कुलित वृत्तिओं में पड़े रहते हैं लिखा भी है किसी ने काव्य शास्त्र

साहित्यमतेऽन्धंतमः प्रविशन्ति नारकास्ते लोका ये अविद्या मुपासते रसचर्वणारहिता अज्ञामूर्खा हरिभजन श्रव्यदृश्यालोकन-रहितास्ततो भूयस्ते रसमात्र परायणत्वेन त्यक्तसर्व धर्म कर्माणः संन्यस्ता दृश्यश्च विद्यायांरता निर्वासना अपि पण्डिता इति वार्णाश्र-मादिशास्त्रीय धर्म हरिकीर्त्तनालेकनादिरसा भेदज्ञान वासना समु-च्चिचीषये दमुच्यते वेदेनेति भावः ॥ २३ ॥

अत्रेदंसमीक्ष्यं भगवन्तः सर्वेदेवा मातृ प्रभृतयः सर्वे भगवन्त एवार्थवादैतद्वाक्य, भीतान्नर केभ्यो भवन्तु उद्धरन्तु भवदुपास-कैस्तु न कश्चित्संसारे नरकान्निस्तारिता इति मत्प्रार्थनमभ्युप-गत्य भवद्देव निन्दक मूर्खजन कर्त्तृक शास्त्र त्यागभीत्या विवे-

---

विनोदेन कालो गच्छति धीमतांव्य सनेन च मूर्खानां निद्रया काल-हेनवा पण्डित लोग काव्या दिरसा स्वाद से आनन्द से वक्त विताते हैं मूर्खों को खाली वक्त मिले तो लड़ाई झगड़ा निद्रालु आदि व्य-सनों में गमाय देते हैं उन से ज्यादह नारकि वे लोग हैं सद्धर्म छोड़ कर कुकर्म मात्र में लगे आत्म ज्ञानाभिमानी और जरठमीमांस कादि रोहिकपारलौकिक वासना से रहित है रसचर्वणा वर्णाश्रम धर्मशा-स्त्रीय हरिकीर्त न काव्य नाटक दृश्यश्रव्य से रसा भेद ज्ञान वासन इन का समुच्चय की इच्छा वाले वेद को त्रिकाल दर्शिया देख अर्थ करा अब यहां समीक्षा करनी चाहिये कि जगदम्बा से लेकर सब देवता भवान्न के पहले पीछे होने वाले स्वरूप हैं अर्थवाद वाक्यों से नरकों से डरे हुए लोगों से तुम ही निकालो ऐसी २ प्रार्थना से महर्षि लोगों ने सभा की स्तुति, इकले इकले की निन्दा में नरक बताते हुए को सब को एक वाक्यता से देवी लेकर सृष्टि मानी इस

षन कुशल महर्षि परिश्रम दर्शन निपुणतमैः सरसैर्यत्सकल पुराणादि वेदाद्येक मत्यादेवी प्रभृतयः सृष्टिकर्त्तार इति निर्विवाद मभ्युपेतम भेदश्चचिति शक्तेर्विशेष्य रूपाया मिथ्यात्वं च सकलस्यातोन्यदार्त्त मितिश्रुति तदुपोद्वलि प्रबलयुक्ति भिरानन्द मयश्चरसात्माचिन्मात्रा ऽद्वितीय इति भक्तिधर्मा चरणज्ञानं च श्रेयो युगान्तरे तुक्कचित्सप्तम भूमिकायां कर्मत्यागेन सकलै कमत्या हेयं परस्पर विद्वेषं परित्यज्यानेक नामध्यानैः परमात्मोपास्य इति भक्ति धर्मं कर्म ज्ञानयोर्वाच्ये समुच्चियवीषया लक्ष्यनिष्ठ त्रिशेष्यत्वात छिन्नवृत्तिकवाधे सामानाधि करण्येन निर्विशेष शुद्धा द्वितीय ज्ञान प्रशंसा

में किसी का विरोध पुराण वाक्य का नहीं होता और चितिशक्ति एक ही है उसे ही कोई नित्यज्ञान कोई संवित् भी कहते हैं उस से भिन्न सम यिक व प्राकृत वस्पन्द व जड सब मिथ्या कोटिका पदार्थ है (होते भी नहीं) माया विशिष्ट ईश्वर देव्यादि है आनन्द मयरस रूप भी वही है वह सत्व प्रधान है उसी को भक्ति धर्मा चरण वैदिक सब प्रकारक स्मृति के अनुकूल भोग हेतु है उसीका ज्ञान मोक्ष हेतु है कलियुगान्तर में कहीं सप्तम भूमिका में संन्यास भी था मोक्ष के हेतु ज्ञानके लिये और प्राप्त ज्ञान को भी समाधि विक्षेप हटाने के लिये ऐसा सब की एकमति से अनन्य भक्ति का अर्थ सब एक माया वच्छिन्न परमात्मा के आकार हैं ऐसा समझ आजकल के लडाई झगडे छोडना नाना मध्यान से पञ्च देवता महाविद्या भैरव सभी की सोहं प्रत्यभिज्ञा के साथ उपासना निर्विशेष शुद्धातीय की करना यह समुच्चयसिद्धि भुक्ति मुक्ति हेतु क्रियान्टाप्तिज्ञानकाभवः करण पर्यन्तमें समोक्षक मत है जो आगे मन्त्र से भी सूचित होगा इसी प्रशंसा वाध सामानाधि करण्येन कर्म भोगार्थ करते हुए निषेध दर्शन

ये इतरमिन्द्रार्थ वाद माहश्रुतिः अन्धंतमो ज्ञानं महामोहं प्रविशन्तितेये अविद्या मल्प विद्यामेकैक मतश्रमि मानेन परस्पर विद्वेष मुपासते मूर्खाश्च धर्मा चरण रहितास्वस्वसू योग्यतानुसार भेदादि पक्षपातिनो जडवादपरायणाश्चचार्वाकादयः शतयज्ञाश्चततो प्यत्यन्त-महानिन स्तेय विद्यां केवलज्ञान मुपाश्रित्यकलो धर्म त्यागेन सन्न्यासं विधित्वेनावश्यक त्वेनाश्रिता इति निर्विशेषा द्वितीय ज्ञान मात्रादि सृष्टि क्रम सकल देवता नाम ध्यानयथाशक्ति पूजामूर्त्यादि स्व-स्वदेवता विशेषस्य चपरमात्मबुद्ध्यान्य स्यापिहिन्दू शास्त्रवहिर्भूत-स्यस्व नियमानुसारं प्रशंसातेन हिनिन्देति न्यायंमुपदिशता श्रीभग-वता सकल हिन्दूपूज्यवेदेनेतिध्येयम् ॥ २४ ॥

वृत्ति समुच्चित निर्विशेषज्ञान मोक्ष हेतु बताने को ; इकले २ कर्म ज्ञान की निन्दा वेद दिखाता है इससे नहीं निन्दा निन्दा के लिये नहीं किन्तु उससे भिन्न की स्तुति के लिये है यह अर्थ पुराणादि में भी दर्शाया है ऐसा सूचित किया इस मत में इसका अर्थ हुआ कि अन्धतामिस्र महामोह में प्रविष्ट होते है वे जो अविद्या याने थोड़ी सी विद्या वाको नहो मानत इतनाही हमारे दादा कहगये था वाकी प्रक्षिप्त है या हमारे अखाडे का यही मत है इत्यादि नये २ पन्थ बुद्ध मजहब के फैलाव के करीब २६ सौ वर्ष से पीछे ही जैनादि चले सनातन के अलक्ष झगड़ों से विना जिनका पहले कुछ मूल भी न था और वे पढ़े व कूपमण्डक सत्कर्म हीन कुकर्ममालगामि वभेदादि में पक्षपात हठ से भरे जडवाद परायण चार्वाकादि व मायावादि बौद्धादि ये उन से भी अत्यन्त तामस वे हैं जो केवलज्ञी ज्ञानित्वा भिमान से सत्कर्म छोड़ कुकर्ममात्र में गळ गये या केवल अन्यमती निन्दा तत्व समझ बैठे ॥ २५ ॥

अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदाहुरविद्यया ।

इतिशुश्रुमधीराणां येनस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

अन्यदेवाहुरिति अन्यदेवाहुः फलं विद्यया अन्यदेवाहुरविद्यया न्यूनाधिकान्धतमः प्रवेश लक्षण फलं येनस्तत्पापं विचचक्षिरे भयात्मकं निन्द्यरूपं तेषां धीराणा मिति पूर्वोक्तं सर्वं विशुश्रुमः श्रुतवन्त इति वैशेषिक गौतम मतेतार्किक मतेतुल्योर्थः संभावयितुं शक्यते विद्याऽविद्यापदार्थ एवः एवः पूर्वमुक्तः ॥ ३ ॥

सांख्यमते सान्यैव प्रकृतिः यथा विज्ञान मपवर्गार्थी शास्त्र-साध्या सात्विको वृत्तिरूपा तदन्यत स्वमाहुः सत्वाख्यं साचान्यैव प्रकृति वृत्तिर्यथाऽविद् अन्यदेवहि रजस्तमो ज्ञान विरोधि आहुः येन-

---

कमज्यादतामसव नरक प्राप्ति दो तरह का न्यारा २ ही फल विद्या और अविद्या कर के कहा जो धीर बुद्धिधैर्य वाले हमें कहगये उन से वह हमने सुना बस वैशेषिक गौतम तार्किक मतों में सम हो का इकट्ठा अर्थ कह दिया विद्या अविद्या पद के जो अपने २ मजहब में अर्थ है वे पूर्व मन्त्र में लिख हो चुके ॥ ४ ॥

सांख्यमत में जिस में जिस प्रकृति द्वारा ही बिबेकख्याति से वित् याने ज्ञान मोक्ष के लिये शास्त्र से पैदा की सात्विकवृत्तरूप है वह और सत्व है और वह प्रकृत्ति और ही है राजस तामस प्रभाव सत्व ज्ञानको विरोधी अविवेक ग्रहहेतु यह जो हमें कहगये धीर अज्ञान कर्म याने ज्ञान राजस तामस वृत्ति वालोंके जानने वाले विचार शील उन ही से सुना वेद ऐसो उपदेश मर्यादा है कि तत्र वह गुरु द्वारा इन तत्वों का लाभ होता है इस बात का अनुवाद कर रहा है ॥ ५ ॥

स्तत्वं विचचिक्षिरेऽस्यास्ता तवन्तस्तेषां धीराणा मिदंवचनं शुश्रुमइत्यर्थमि प्रायः ॥ ४ ॥

दयानन्द मते अज्ञानन्यूनाधिक भेदो विद्याऽविद्याश्रितयोः प्रकृतिभेदात् संस्कार भेदाच्च ॥ ५ ॥

दयानन्दि पठिताठिता ग्रह भेदेनतदीयताम सवृत्तिन्यूनाधिक भावफल मन्यदेवतदर्थवा दित्रिकालदृक् वेदान्नः श्रुतमिति च समीक्ष्यार्थः ॥ ६ ॥

योगमते च विज्ञानभिक्षुमते तुल्योर्थः सत्वोपचय विशेषस्य ज्ञान प्रयोजकत्वाद्रजस्त मोन्यूनाधिक भावस्यैवा ज्ञान प्रयोजकत्वात् मीमांसकमते तार्किक तुल्योर्थोऽस्य मन्त्रस्य । ७ ॥

प्रकृति के भेद से ज्ञान अज्ञान को न्यून अधिक तामस होना भिन्न २ हो गति पर्व मन्त्र से कही यह दयानन्द के मत का भी अर्थ हो सकता है ॥ ६ ॥

दयानन्द खण्डनार्थ हो इसका खण्डनार्थ होगा उस में कहे वे पढे, पढे, हठो दयानन्दियों का तामस न्यूनाधिक भाव वेद ही से बताया सुना यह स्फुट अर्थ है ॥ ७ ॥

योग मत में विज्ञान भिक्षु मत में भी अपनी २ अविद्या विद्या का फल जुदा २ ही कहे उनके अनुकूल वो दो से सुना यह अर्थ बरोबर है ॥ ९ ॥

शङ्कराचार्य का हमारी टीकानुसार यह भाव है कि ज्ञान का फल भो (समुच्चितानुष्टान में अवान्तर) यह श्रुति में ही है कि देवता ज्ञान से देवलोक है कर्म का भो कर्म से पितृलोक है ऐसा फल

शा० भा० अन्यत्पृथगेव विद्यया क्रियते फलमित्याहुर्वदन्ति वि-
द्यया देवलोक इति विद्यया तदारोहन्तीति श्रुतेः । अन्यदेवाहुरविद्ययाक-
र्मणा क्रियते कर्मणा पितृलोक इति श्रुतेः । इत्येवं शुश्रुमः श्रुतवन्तो वयं
धीराणां धीमतां वचनं ये आचार्या नोऽस्मभ्यं तत्कर्म च ज्ञानं च विचचक्षिरे
व्याख्यातवन्तस्तेषामयमागमः पारम्पर्यागत इत्यर्थः ।९।१०।

ब्रह्मज्ञानेतरदेवता ज्ञानकर्मपृथक्त्वज्ञानेनान्यतरस्यैव विकल्पक-
रणे पूर्वोक्तं फलभेदो देवलोकावान्तरं तु समुच्चयस्येति भावः ॥११॥

माध्वमतरामानुजभट्टभास्करमत निम्बादित्यवल्लभमतेषु शिव-
भक्तत्रयेशाम्भवेनसान्यैव प्रकृतिःसत्त्वाख्याभक्तिर्वास्त्वीयाऽऽ तदन्यद्वि-
तत्वं सान्यैव प्रकृतिरजस्तमोन्यूनाधिकभावरूपो यया ऽविद्ज्ञानंतदन्य

श्रुति में ही कहा है ऐसा ही समुच्चय ज्ञान कर्म के फल बताने वाले
दयाचार्य उपदेशों सुना इकला २ करने में तो पीछे कहा तामस होना
ही फल है ॥ ११ ॥

माध्वरामानुजभट्टभास्कर निम्बादित्यवल्लभमत में और शिव-
भक्तों के और शाम्भवों के मत में अर्थ है कि वो और ही प्रकृति सत्व
गुण की भक्ति अपनी २ विद्या अपने २ शास्त्राचार्यैंउपदिष्टज्ञान
द्वारा है न्यून अधिकता मलफल की तामस प्रकृति वो और ही है।
जिस से अविद अज्ञानी है और अपनी २ भक्ति का जुदा २ ही फल
है जो ऐसा भक्ति तत्व का उपदेश कर गये उनधीरों से हमने सुना
यह अर्थ है वैष्णव पांचों मतों में उत्तरार्धका यह भी अर्थ है कि जो
हमें अनः शकटासुका वा उलटाना आदि बालावस्थामें ही विलक्षण २
काम करने भगवान् विष्णु उसका भक्ति प्रक्रिया से जो हमें उपदेश
शास्त्रानुसार कहगये परम भागवत उन्हीं से हमने सुना ऐसा उप-

देवतत्त्वं रजस्तमोरूपं भक्तिश्चान्यैवसाऽस्त्रीयाऽऽ तत्फलंचान्यदेवाहुरिति शुश्रुमधीराणांवचोये नोऽस्मभ्यं तद्विचचक्षिरे ऽज्ञानसः शकटासुरस्यतत् शत्रुरूपं विष्णुं हरिंये आहुरित्युपेदाशानुवाद इतिभावः ॥ २० ॥

शाक्तमते सान्यैव प्रकृतिर्भक्तिश्चययाऽज्ञानं तद्विसतमः सत्त्वमन्य-देवाहुरथवा जगदम्बादि परमात्मकृपा जन्मजन्मान्तराभ्यासंपादित-ज्ञान प्रयोजकविशुद्ध सत्त्वमन्यदेवाहुः अन्यदेवाहुर विद्ययारजस्तमआ-ख्यंवोत्कृष्टाऽप्रकृष्टतत्त्वंयया विद्ज्ञानमितिशुश्रुमधीराणां येतत्त्वमनो मातृरूपं विविच्यचक्षिरे प्रकाशितवन्त इतिभावः ॥ २१ ॥

साहित्यमते अन्यदेवरस विरसत्वंच विद्याऽविद्याभ्यां भिन्नमाहु-रितिशुश्रुमोधीराणां सहृदयानां ववोधनस्तद्विचक्षिरे शिक्षाप्रणाल्या स्ववासना परीक्षणेन चेतिभावः ॥ २२ ॥

देश जिज्ञासु का अनुसन्धान प्रक्रिया का यहां वेद अनुवाद करता स्फुटाक्षरों से हो रहा है ॥ २० ॥

पूर्वोक्त मत में अर्थ है कि वो प्रकृतिओं भक्ति अन्य ही है जिस करके ज्ञानी हो वह सत्त्व है अथवा वह जन्म जन्मान्तराभ्यास परीपाटी से संपादित ज्ञानसे निर्मल सत्त्वप्रधान अन्तःकरण और ही है और वोधन्सकरण अज्ञान से मलिन है न्यूनाधिक तामस पीछे का और ही है भक्ति हीन की प्रकृति है जिस द्वारा अज्ञानी है यह उन्हीं से सुना जो हमें अतः जगदम्बारूपतत्त्व विशेष से भक्ति दीक्षा सहित उप-देश कर गये ऐसा उपदेशक जिज्ञासु के अनुसंधान का वेद अनुवाद कर रहा है क्योंकि त्रिकालदर्शी है ॥ २१ ॥

साहित्य मत में अर्थ है कि रसवेता और रस तत्त्व हीन का

समीक्षकमते अन्यदेव तत्वंफलंचाहुः तांचान्यामेव अन्याच अन्य-च्चान्यत् नपुंसकमनपुंसके इति समासात् भक्ति प्रकृतिचान्यामेव यथा-वित् ज्ञानं यतोहिविद्वेषादि परस्परविरोधसहितज्ञान भक्त्यादितत्प्रयो-जकसत्वादिचान्यदेव रजस्तमोऽप्रयुतं केवलविद्ययाऽन्यदेन्यदादेवेति वा अविद्यया अल्पविद्यया यथाऽविद् ज्ञानंतच्चान्यदेवतत्वमाहुःइति शुश्रुम धीराणां बुद्धिमतांधैर्यवतांनयन स्तस्यतत्वं मतस्य विविच्यहेयोदेपाया-दिकं व्याख्यातवन्तोऽनन्तो यातुः सृष्टिरूपतत्वं तत्पदवाच्यार्थ त्वंच तद-धीनसशक्तिकान्येषांच तत्पदार्थंत्वमुपास्यत्वंच नानानामध्यानभेदैरिति वेदो भगवानुपदिशति यस्योपदश्यत्वं तदोयवक्तव्य मनुवदन्निवेतिन-वेदस्याभिनवत्वशङ्कानेनकार्येतिध्येयम् ॥ २१ ॥

तत्व सवासन निर्वानादि विद्या अविद्या के भेद द्वारा भिन्न २ ही है यह उन धीरों सहृदयों से सुना जो हमें काव्यज्ञ हो शिक्षा भ्यास लिखा गये और निर्वासन और सवासन आदि को परीक्षा करगये ॥ २२ ॥

समीक्षक मत में इसका अर्थ होगा कि अन्यत् अन्या और अन्यत् शब्द का समास होने से एक रह जाने से भक्ति प्रकृति तत्व फल सब लेलो तो यह हुआ कि वो और प्रकृति तामस है जिस से अज्ञान व अल्पज्ञान व हठ व पक्षपात प्रक्षिप्त आदि कहने वाला हुआ या वो और ही अविद्या व आत्म विद्या का फल व तत्व है जिस से परस्पर विरोध लड़ाई झगड़ा नास्तिकपन आदि बन पड़ता है वैसे अश्रद्धक अभक्त निन्दक कुकर्मी मूर्ख नास्तिक पन के तामस अन्तः करण और ही हैं और सत्व प्रधान जन्मान्तराभ्यास गुरु परमात्म कृपा से दया श्रद्धा भक्ति कर्मठता सुहृदयता रसिकता सर्व प्रेम

विद्यांचाविद्यांचयस्त द्वेदोभयंसह।
अविद्ययामृत्युंतीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥११॥

विद्यामितिवशाषि कमने विद्याज्ञानइत्यादि सत्तत्वार्थज्ञानपूर्वकं जीवदेहजोवपरम त्मात्मनाम यत्येनज्ञानमितरस्मात्परस्परंच्च ततः केवलंपरमात्मचिन्तनभेदज्ञानतत्कर्माचरणरागद्वेषरादिर्त्यैर्नितरांप्रगाभाव समापादनेनततः पुनरावृत्तिः कारणाभावात्तन्मात्रार्थव प्रयासात्।

तदुच्छेदप्रयासवैफल्यापत्तः शास्त्रोपदेश दि वैयर्थ्यपत्तेश्च तत्संवादिनीश्रुतिर्नसपुनरावर्त्ततेन स पुनरावर्त्तते इति अविद्यामज्ञानं देहात्मवादादि ततोहेयत्वविनश्वरत्वरागहेतुत्वबन्धजनकत्व दुःखहेतुत्वादि

शास्त्र विहिता चरण पण्डितना आस्तिकता आदि रखने वाला आन्तःकरण और ही है अथवा केवल ज्ञान का फल भी पीछे कहा और ही है यह सब हमने या अनस्तत् जगदम्बा प्रसाद रूप व जगदम्बा को आदि सृष्टि कर्त्ता कहने वाले तत्पद का वाच्य कह कर और सभ ही तत्पद वाच्य सदा शिवादि सशक्तिक नाना नाम रूप ध्यान भेद से उसी निर्विशेष तत्पद लक्ष्य और धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य शुद्धा द्वितीय तत्पद वाच्य को सो हम प्रत्यभिज्ञा पूर्वक शक्तियों में सा उ म हैं भेदों में सः अहं अर्थ से भावना से भक्ति वैदिक सर्व स्मृति मूल धर्माचरणसमुच्चयनिषेध ज्ञानके साथ बताने वाले हेय उपादेय कोटि को पृथक् कर १६ सौ वर्ष पहले तक सृष्टि में चले आये धर्म के फूट मेवा की सातों कमेटी की जुदाई को हटाने के उद्यमवालेधोरों के कहने मुताबिक सुना पेला समीक्षक के उपदेशानुसंधायक जिज्ञासु का अनुवाद भाविसमीक्षक तत्व वेत्ता पहले चले आये तत्व के साथ भावि झगड़े और उन के हटाने के प्रकार के वेत्ता त्रिकाल दर्शी देव भगवान् का उपदेशानुवाद है ॥ २३ ॥

ज्ञानैस्तत्त्यागस्तन्मिथ्यात्व हानप्रवृत्ति रूपस्त तद्वतज्ञाने नान्यरागो च्छेदः पुनरनुत्पत्तियोग्य रागाभावस्तेन स्वसमानाधिकरणदुःखप्राग-भावासमानकालिक दुःखध्वंसे केवलात्मतानित्यमनआकाशयोरपिशरी-राद्यभावे न दुःखाद्य जनकत्वंपुरीतति वहिर्देशात्मकशरीरस्यावच्छेदक त्वमपरज्ञानदुःखादि जनकत्वात् तदभावे तद्भावात्तदाद्यथोविद्यानिरुक्त ज्ञानं चोभयं सहवेदज्ञानाति इदंहेयं मिथ्या ज्ञानं अयं तद्धानहेतुरे तत्तत्व ज्ञानं मित्युभयं वेदसपुरुषःसह कर्मणा तत्संपादित शुद्धयायोगज धर्म-जया वैराग्यं द्रढयन् अभ्युदयहेतु धर्मेण च वेदप्रमाणकतत्सुखमश्नुव-न्नेव सहसमूहालम्बन तज्ज्ञानेनवा अविद्यथाहेय बुद्धया मृत्युंजन्मत-त्साध्यं तत्त्यागेनतीर्त्वा तज्जनक रागाभावसंपादन रूपेण जन्ममरण

वैशेषिक मत में इसका यह अर्थ है कि विद्याज्ञान जो कि द्रव्यादि सात पदार्थों का और नाना जीव अन्य देहादिओं से और एक परमात्मा अन्य जीव परमात्मा दोनों सर्व व्यापक परमात्मा का चिन्तन भेद से आत्मा के और सत्कर्माचरण राग द्वेष रहित होना उस से मोक्ष होताहै वह पुनरावृत्ति शून्य है क्योंकि राग ही पुनर्जन्म हेतु है वह जबतक है तबतक मुक्ति का लेश भी नहीं जब वह अत्यन्त छूट गया तब कारण न होने से जन्म पैदा करने में ब्रह्मा की तो ताकत कभी नहीं फायदे के वगैर फेल कौन कर सकता है राग ही इसी के लिये मुक्ति हेतु शास्त्रोपदेश किया जाता है अगर वह न छूटे तो वैराग्य शास्त्रोपदेश भी व्यर्थ हो जाय इसी बात को और श्रुति भी कहती है नस पुनरावर्त्तते' मुक्त का पुनर्जन्म नहीं होता और अविद्या अज्ञान जैसे देह आत्मा आर मुक्ति से लौटना दयानन्द की क्रियादि राग द्वेष सहित मुक्ति मानना मोक्ष न होना इत्यादि इन में

सानर्द मुत्तोर्थ स्वसमाधिकरण दुःखप्रागभावा समान कलिकत्वांशं-दुःखध्वं संवासमुपपाद्य विद्यया ज्ञानेन वामृतत्वं मरणाद्यभावरूपं दुःख-ध्वंसपूर्वांशं वा समश्नुते कर्मभोगेण दुरितक्षयाच्च साक्षाच्च चरम दुःखविनाशे तत्वज्ञानस्य हेतुना स्वीकारादेति भावः ॥ १ ॥

गौतममते अज्ञानंच विद्यांचय उभयं वेदमिथ्याज्ञान मात्मादिप्र-मेयान्ते नास्तिआत्मप्रेत्यभावोवाशरीरादिरात्मा नपुण्यपापादिरस्तीति इदंच शरीरादिषु रागद्वेष जनकमात्मसुखेच्छया परासहनपराच्च क्लेशावे-क्षणादिनिश्चितंततश्चरागद्वेषादिमानसपापोदयेतद्वेनुंफलंचमनसानि-श्चित्यक्त्वाकायेनवाचाचासत्यहिंसाद्यनर्थकस्वदुःखमात्रजनककर्माचरति येनपापंतत्फलंचप्राप्नोति न केवलनमनसापापंधु किंवाशास्त्रंवामनुते त-: ज्ज्ञात्वामिथ्यासद्रूपंबन्धकंहेयंचकृत कर्मभादिनाशमतिताङ्नाशोऽपितज्ज

अविद्या को हेय समझता हुआ और मिथ्या ज्ञान मानता हुआ और उस के हटाने का हेतु तत्व ज्ञान है यम नियमादि से वैराग्य पकता है यह साथ २ दोनों विद्या अविद्या को उनके कामों को समझता हुआ जानता है सत्कर्मों के साथ जो कि वेद और कुल धर्म शास्त्र संह पुराण तन्त्र गृह्य कल्पादि में आये हैं वह अभ्युदय को वेद मूलक उस धर्म को आचरण करता हुआ प्राप्त होता है अथवा समूहालम्बन उन दोनों के ज्ञान में अविद्या को हेय बुद्धि में समझ रागानुत्पत्ति धर्मा धर्मानुत्पत्ति जन्मानुत्पत्ति (राग न होना उससे पुण्य पाप न होना उसे जन्म न होना पूर्व इकट्ठे हुओं का प्रायश्चित्त भोग आदि से नाश हो कर मुक्ति होती है इस तरह पुनर्जन्म नरक भोगादि से प्रायश्चि-त्तादि से दुःख नाश और दुःख प्रागभावासमानाधि करण त्वांश तत्व ज्ञान से बनाता है वही दोनों अंश मिलकर मुक्ति है अथवा

नित माशायोंगाऽजन्मान्तररूप दुःखहेतुत्वादिति । वेदतद्विरोधि तत्वज्ञानमात्मादिमेयसत्यत्वादि वेदनलक्षणं तदाश्रयांहिदुःखं जन्मादि॰ भावयनूरागद्वेषादिहाने यतमानःधर्मोद्याचरति अहिंसादिकायेन वाचा॰ निश्चित्यमनसा तदुपयुक्तापेक्षादिनावे न च ननइव धर्मफलमुपभुञ्जन्न स्यासाद्वैराग्यपरिपाके मिथ्याज्ञानाधानप्रवृत्यनुत्पत्तिः कत्रचिदवस्था विशेष युगान्तरे संन्यासफलोबानप्रस्थान्तर्गत कत्रचित्कभूमिकाविशेषे देवताभावकालेवाततश्चधर्माधर्माद्यनुत्पत्याजन्माद्यनुपत्यास्वसमानाधि करण दुःखप्रागवभासमान कालिकत्वस्यसिद्धभागेन प्रारब्धनिवृत्तौ

अविद्या से वैराग्य संपादन कर दुःख प्रागभावा समानधिकरण अंश वनाकर तत्व ज्ञान से दुःख ध्वंस को मिथ्याज्ञानानुत्पत्ति द्वारा चरम दुःख नाश के प्रतिसाक्षात्कारणत्व द्वारा वा पैदा करता है ॥ १ ॥

गौत्तममतमें इसका अर्थ होगाकि अज्ञान वा मिथ्या ज्ञान दोनों जानता है याने आत्म शरीर इन्द्रिय अर्थ बुद्धिमान् दोष धर्माधर्म प्रेत्यभाव फल दुःखअपवर्ग इन बारह प्रकारके प्रमेयों में अन्यको अन्य समझ या उसे न जान कर आत्मा शरीर है इत्यादि मान कर उस के उपकारों में राग और अनुपकारों में द्वेष होने से कायिक और वाचिकमानस द्वारा ताडन गाली आदि कर्म पाप जनक करता है उस से पाप के भोग के लिये जन्मादि होते हैं वह दुःख और दुःख जनक होते हैं इस से सभी दुःख है ऐसे हेय रूप से मिथ्या ज्ञान को जानकर इससे निर्विण्ण रागा भाव पैदा करता हुआ मण्डूकवाद विद्या आत्मा इनसे शरीरादि से भिन्न है ऐसा जानकर प्रेत्यभाव बन्ध से अपवर्ग फल है दुःखजन्म एक विंशति(२१)प्रकारका मिथ्याज्ञान उससे जनित रागादि जनित धर्मा धर्म हो होता है वह रागाभाव से नहीं यह जानकर रागा

संचितस्य कस्यचिद् मुक्तस्यापि सहकारिरागनाशे मानुषाकारता भावा त्कार्यजनकत्वाच्चरमदुःखध्वंसः तदत्यन्तविमोक्षोपवर्ग इति सूत्रेण लक्षितःसिद्धयति तदाऽविद्यायामृत्युदात्मकत्वं तत्र तु रागस्य तज्ज्ञाना द्धेयत्वादि ज्ञानाद्रागा सरणेपरस्परया तद्ज्ञाननिवर्त्तक विद्ययातत्वज्ञाने नामृतं निरुक्तलक्षणकं मोक्षमश्नुते प्राप्नोति तद्धयमृतंनखलुतद्ध्वंसः ससारेणेति परमपुरुषार्थ इति भावः॥ २॥

उभयोच्छिष्टताकिंकमतेऽपि गौत्तमवदात्म तत्वज्ञानमेव मुक्ति-हेतुः परंद्रव्यादि पदार्थानां तत्वज्ञान पूर्वक परमात्म विचिन्तनसत्कर्म परायणत्वादिना वैराग्यसंपादनाधीनाः मुक्तिः प्राचांस्वसमानाधिकरण

भावस पूर्वक कर धर्माधर्मसे जन्मा भावरूप मोक्ष होता है फिर रागा-भावसे पुनर्जन्म नहीं होता जन्म से अत्यन्त फिर जिससे संयोग भोगा-धायक न हो ऐसा वियोग भोगाधायक संयोगाभाव होता है वही मोक्ष है भावि दुःखाभाव से दुःखप्राग भावासमानाधि करणत्व प्रथम दल और तत्व ज्ञान से साक्षात् दुःखनाशकत्व स्वीकार से वा भोग से प्रायश्चित्तादि से दुःखनाश द्वितीय दल होता है दोनों दल मिलने से तदत्यन्त (जन्मरूपदुःख प्रागभावा समानाधिकारण) विमोक्षोऽ (जन्म रूपदुःखध्वंसः,)पवर्गः ऐसा गौत्तम सूत्रोक्तमुक्तिलक्षणसिद्ध होता है।२।

गौत्तम वैशेषिको भयोच्छिष्टताकिक मत में भी गौत्तम की तरह ही आत्म तत्वज्ञान मुक्ति का हेतु है परन्तु द्रव्यादि सात पदार्थों का कणाद की तरह तत्व ज्ञान होकर उन से भिन्न आत्मा का जानना परमात्मा कणादमत के अनुकूल जान कर उसका चिन्तन सत्कर्म परायण होना कलि से इतर में संन्यास से कलि में वानप्र-स्थाश्रम आश्रमों में वैराग्य संपादन करना उस से मुक्ति होती है ऐसा

दुःखप्रागभावा 'समानकालिकत्वविशिष्ट दुःखध्वंसोऽसमानकालिकत्वांशो द्रव्यादि ज्ञानपूर्वक तत्वज्ञानं ततइतरभेद ग्रहरूपमनने तन्निदिध्यासनं गौतमोक्तरीत्याभोगाच्च दुःखध्वंस इतिमतं नव्यानां दुरितवत्तितं लक्षणम् पूर्वोक्त मसमानकालिकत्वांशो रागाभाव संपादन द्वारा तत्वज्ञानं प्रयोजकम् दुरितध्वंसेव भोगप्रायश्चित्तरिदेर्यथा संभवकारणत्वमिति मतमक्षरार्थस्तु वैशेषिकवत् नव्यमतेऽमूतपदा दुःखस्थाने दुरितपदंदेयम् इतिध्येयम् । ३ । ४ ।

दयानन्दमते प्रकृति स्वरूप स्थितिः साम्यावस्थारूपाजीवस्यव्याप्यरूपस्तदानीं शरीरप्राकृतनान्तःकरण रहितत्वाज्ज्ञानसुखदुःखादि

माना है प्राचीन उन में भी दुःख प्राग भावा समान कालिक दुःखध्वंसमुक्ति मानते हैं असमान कालिक त्वान्त अंशतत्वज्ञान साध्यमानते है और भोग से उत्तरांश मानते हैं नूतनदुरित पद दुःख की जगह देकर लक्षण लिखते हैं तत्व ज्ञान से रागाभाव द्वारादुरित प्राग भावासमान कलिकत्वअंश सिद्ध होता है दुरित ध्वंसांशमें प्रायश्चित्त आदि से होता है यह मत है। इस से द्रव्यादि पदार्थ के मिथ्या ज्ञान और अज्ञान को और तत्व को जानता है वह हेय मिथ्या ज्ञान से रागाभाव संपादन करता हुआ सत्कर्मादि परायण मरकर तत्व ज्ञान से मुक्त होता है जिससे पुनर्जन्म न हो यह अर्थ है ॥ ३ । ४ ॥

दयानन्द के मत में प्रकृति की स्वरूप सत्वरजःतमः की साम्यावस्था में स्थिति होना जीव व्याप्यका शरीर अन्तःकरण न होने से ज्ञान सुखदुःखादि न होकर किसी एक देश में परमात्मा के पड़ा रहता है स्वतन्त्र गति वाला होने से जहां इच्छा करता है चला भी जाता है (मगर सृष्टिक्रम के विरुद्ध तो पोप लीला होगी। शरीरादि

एहिनः क्वचिद्देशा व छेदनेश्वरेतिष्ठति स्वतन्त्रगतिर्यत्रेच्छति तत्र यात्वाय परमाणवस्तु यत्रतत्र परमाण्वन्तरवद्वा प्रकृतौवालीना इति प्रस्तव्यमवगत्य जीवपरमात्मादिज्ञानं विद्याअज्ञानमविद्योभयं विदित्वा अविद्यया तद्वारणेन मृत्युंतीर्त्वाकिञ्चित्कालपर्यन्तं स्थित्वा तथा मृत्युमाप्यन्तःकरणंवातीर्त्वाप्रकृतौविलाप्यअविद्यासंपाद्यकर्मणा वशुद्धिं संपाद्य विद्ययाज्ञानेन मोक्षमश्नुते प्राप्नोति अमृतपदंचगौणममृतमिव दुःखराहित्येनस्वादिष्ठत्वातअपामसोममिति वच्चिरस्थायित्वाद्वैस्यर्थः संपादयितं शक्यते ज्ञानकर्मणोश्चाश्रमभेदेन व्यवस्था संन्यासस्यतेन लिलितत्वात्प्रकृतिरेकापिरागादिभिश्चतुर्विंशतिधामुखकर्णनासाशरीर गोगर्दभादवादि स्वेष्टरूपं संपादयतीतिसमुक्तम् इतिदिक् ॥ ५ ॥

के परमाणु इधर उधर घूमते रहते हैं अथवा प्रकृति में लीन होते हैं ज्ञान कर्मकी आश्रम व्यवस्था है यह माना जाता है संन्यास भी उसने माना है इस से अनुकूल मन्त्रार्थ होगा कि अविद्या अज्ञान और ज्ञान दोनों जानकर अविद्या द्वारा मरने के बाद कहीं कुछ देर ठहर अथवा अन्तःकरण का प्रकृति में लीन कर अथवा अविद्या संपाद्य कर्मों से शुद्धि संपादन कर ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करते हैं जिसमे जो चाहे सो बन सकते हैं रागद्वेषादि २४ प्रकार की एक ही प्रकृति होती है वह जैसा चाहे आंख मुंह कान नाक शरीर गधा घोड़ा आदि बना देती है इस में यह समीक्षण करना चाहिये कि संन्यास का कलि में निषेध ही है उसने प्रमाण दी हुई श्रुति उन का भी संन्यास पक्षपात आनन्दगिरि के खण्डन में संस्कृत टीका में विस्तार से कहा है पिष्टपेषण नहीं करते अथवा दयानन्द का लेख भी युगान्तर की व्यवस्थानुवाद मान ले सकते हैं कर्मत्याग तो उन

मत्रेदंसमीक्ष्यं सन्यास विचारस्तु बहुतर मुक्तस्तद्वत प्रमाणभाव श्रुती-
नामप्यासक्ति राहित्येनैव निर्णयो युक्त: कलौ संन्यास निषेधात् तत्सं-
न्यास लेखोपि युगान्तरे एवव्यव स्थापयिन्तुं युक्तः कर्म त्यागश्च न
कदापि युक्तइति तुशाङ्करस्यटीकायाः समीक्षया समम् मुक्तौ स्वछन्द
चारित्वंदुःख रहितत्वं विषमं युक्तान्न वत्सुख स्याप्यभोज्य त्वाद्दुःख
फलपत्व मानन्दवत्त्वबन्ध रहितत्वं प्रकृत्ति सत्वेन शक्तिविशेषस्य भूता
दिवत् सत्वेन शरीरेन्द्रियादीनां प्रकृति लीन तया सूक्ष्म कारण रूप-
तापन्नानां पुनः सरूपादनक्षमत्वं भूतानां देवानां चासत्वेपी त्यादिसर्वं
गतिक्रिया राहित्यात् वन्धस्यानुच्छेदात आनन्दायोगाश्रयत्वस्येतरमुत-
कस्य तदनभ्युपगतस्य तुल्यत्वात् तदानोपपिसुखस्य बन्धनत्वात् कैल्या

आश्रम में भी नहीं जीव व्याप्यत्व भो बहुधा खण्डित ही है उस से
गतिमान् नहीं हो सकता और स्वच्छन्दचारी और दुःख रहित
और राग द्वेषादि २४ प्रकृति वाला यह परस्पर विरुद्धमात्र है राग
द्वेषादि हं और बन्धहीन मुक्ति है यह तो वद तो व्याघात है रागादि
ही तो संसार बन्धन रज्जू रूप बन्ध है और भूत प्रेतों को सो रागादि
भरित शक्ति स इन्द्रिय शरीरादि बन जाना एसी मुक्ति तो हम भूत
प्रेत कर्म देवता वगैरह नहीं मानते इस बात से विरुद्ध है उन्हीं को
भूत देवतादि शब्द से न कह कर मुक्त नाम रख कर झूठा मत खड़ा
करना गलत फैहमो में डालना है और निन्दा करके देवताओं की
कंसादिवत् । फिर देवता के काम मुक्ति नाम रख कर दुरभिलाषा
मात्र है देवता भूतादि शब्द वाले भी यह जानते अपनी निन्दा करा
कर उसी काम देने वाला मुक्त शब्द लेना भी उनसे मुशकिल है
और ऐसे बन्धन रागद्वेष सुखदुःखादि शरीरादि मान कर कैवल्य

नुपपत्तिश्चभूता नङ्गीकृतं स्वमतविरुद्धत्वाच्चतत्रसुखभोगसंभवेतत्स्वी कारं परित्यज्य जन्मधारणार्थमागमनस्यायुक्तत्वात्सुखस्यदुःखसाहचर्य नियमाच्च व्याप्यत्वस्य पूर्वं खण्डितत्वाच्च तत्स्वीकारःसिद्धान्त युक्ति विरुद्धइतिश्रेयंश्रृण्वन्श्रोत्रं भवति इत्यादि शतपथवाक्येनानन्दोपपत्ति कस्यनूनमित्यादिनावेंदमन्त्रे स्वकल्पितार्थेन मोक्षपुनरावृत्तिवादेना- नावृत्तिरिति सूत्रस्य नसपुनरावर्त्तते इतिश्रुतेश्चायुक्तो (ठीकनहीं) ऽयुक्तत्व स्वीकारश्च श्रृण्वन्नित्यादेर्ब्रह्मणो मायावशेन नानासर्जन क्षम त्वाद्देवताधिकारगतानां तदस्वीकृतानां सामर्थ्यस्यच वर्णनादन्मोक्ष प्रकरणस्थत्वाद्देवताधिकारस्थानामेवस्वर्गिणांनानाविधानन्दानुभवस्य क्षीणेपुण्येमर्त्यलोकेविंशन्तीत्यादि प्रमाणैराहितकाभ्युपगतानां स्वकर्म-

---

पर्याय मुक्ति शब्द वाला उन प्रेतों का नाम रखना किसी अकलमन्द की अकल में नहीं आ सकता यह तदत्यन्त विमोक्ष सूत्र के वात्स्या- यन भाष्य के मूल अक्षरों में लिखा है उसके पढ़ने वाले कहां तक ऐसी दार्शनिक बुद्धि पसन्द करेंगे और सुखदुःख जन्य दोनों साथ ही रहते हैं तो सुखार्थ आंख कान बनने में दुःखध्वंस मोक्ष भी कैसे होगा प्रत्युत ऐसा मानना तो अपने को वात्स्यायन २५ सूत्र तक भी देखा नहीं होगा इसी बातको अनुमान करा रहा है शृण्वन्श्रोत्रं भवति यह मन्त्र भी कर्म देवताओं के सामर्थ्य का ही अनुवादक है इसे और तर्फ निकालकर जोड़ना गलत फैमी में डालना है ऋग्वेदका पुनरावृत्ति में प्रमाण दिया मन्त्र भी उसका कर्मदेवताओं का पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग नरक से लौटकर मनुष्यों के घर जन्म लेना इसी अर्थ को कहता है वे सब तो बद्धतर कोटि में ही हैं नसपुनरावर्त्तते का न शब्द आगे पीछे जोड़ना भी वेदको निरर्थक अयुक्त शास्त्र विरुद्ध अमृतादि केव-

मात्रोपभोगिनां वद्धानामेवामृत शब्द वाच्यानामपामपामसोममृता-
अभूमेत्यादि सुराग्रह यज्ञ कर्म फल भूतानामेव पुनरावृत्ति परत्वे तन्मु-
क्तस्य तद विशेषणास्तिका भ्युपगत परममुक्ति त्यागस्यस पुनरावर्तते
अशरीरंवा वसन्तं प्रियाप्रियेन स्पृशतः इत्यादि श्रुतीनामनावृत्तिःशब्दा
दिति सूत्राणांचविरोधभावात् (ठीक नहीं) इत्य स्वीकारप्रतिज्ञामात्रेणवस्त्व
सिद्धेःसुखरागेण वैराग्यानुपपत्ते योगिनः वस्थासंप्रज्ञात समाधि स्थित
प्रकृत्य संगत्वा संसिद्धि कोटित्वेन मुक्ति स्वरूपा परिपन्थित्वस्य सिद्धच
स्वीकारस्य स्व विरुद्धत्वाद्युक्ति श्रुति स्व सिद्धान्तै तदत्यन्त विमोक्ष
इत्यादि सकलदर्शनविरुद्धत्वाद्रामानुजादीनामिव परममुक्त्य स्वीकारेण
पुनरावृत्ति रूपांश र्यवसानाद्भावं जैमिनिरित्यादे दैंवतापरत्वान्नामान्त-

---

त्यादि शब्दविरुद्ध दर्शन शास्त्रप्रणतृसकल मुनि विरुद्ध पुनरुक्ति दोष
का ही केवल भागी बनाना है इसी वास्ते श्रुति में कहा है अशरीरंवा
वसन्तं प्रियाप्रियेन स्पृशतः जो मुक्त शरीराध्यास रहित और परम
मुक्त को कभी भी फिर सुखदुःखादि साक्षात् वा जन्मान्तर द्वारा
नहीं हो सकते अपामसोममृताअभूम इस जगह को तरह मुक्त में
अमृत शब्द का प्रयोग चिरस्थायि पर है ऐसा वाचस्पति के कर्म
देवता के अमृत शब्द का वैसा अर्थ करना सुन कर मोक्ष में वैसा
लगाना भी गलत फैमी में डालना है युक्ति शास्त्रादि विरुद्ध निष्प्रमाण
मुख्यार्थ छोड़ना नहीं हो सकता और मोक्ष के बगैर शक्यार्थ कहीं
है तो नहीं और अपाम इस मन्त्र में अर्थ वाचस्पति का बदलना एक
अपने ज्ञान की कुम्हार के अपने घड़े की तरह प्रशंसामात्र है सोम
ही नाम उस मन्त्र में अमृत का है याज्ञिक मन्त्र और पद्धति ग्रन्थोंमें
शराब के बगैर अमृत नाम किसो का नहीं वैराग्य बिन मुक्ति नहीं

रेण स्वयमस्वीकृत कर्मदेवतास्वीकारमात्रत्वाच्च युक्तत्वं स्वयमेववेद्यम् अविद्यां दयानन्द मत रूपां विद्या तत्समीक्षाच विचार्यमितिश उभयंवेदस दयानन्द मतप्राप्य दुर्मृत्युत्व प्रेत्यभावंतीर्त्वा समीक्षया सनातनामृतत्व देवत्व मश्नुते वेदस्य त्रिकालदर्शित्वाद्यमप्यर्थः सांख्यमते विद्यांच केवलात्म ज्ञानरूपां जन्मजन्मान्तराभ्यासादर दीर्घकाल नैरन्तर्य सेवितामविद्यांच भोगपर्यंवसान समुपजात विवेक ख्याति पर्यन्तां सहोभयं कर्मणासहैव स्वेनस्वेन वेदजानाति असौ अविद्यया भोगेन कर्मक्षयात्पूर्वेषामागन्तूनाञ्चावृतत्वात्कारण रूपेणैव नष्टप्रादुर्भावशक्तिकेनावस्थानात् रागपर्यन्तं कर्म तदुपभोग परम्परयाऽपि तदत्यन्त सूक्ष्म

यह मूर्ख तक भी जानते हैं वैराग्य के लिये संन्यासाश्रम के पक्षपातियों ने उससे भी अपना पक्ष कहाया रागद्वेष मुक्ति में भी फिर उसे मानना कहां तक बुद्धिमत्ता है भावं जैमिनिरित्यादि भी कर्म देवता पर ही लगता है इससे यह दयानन्द मत परस्पर विरुद्धोक्ति शास्त्रों की तह उड़ाने वाला युक्ति विरुद्ध बुद्धिमान् कहां तक अकल मन्दों में आसकताहै यह सुदही सोचलें दयानन्द मत रूप अज्ञान और समीक्षा रूप ज्ञान दोनों समझ दयानन्दके मत वालों की लुप्तपिण्डोदकक्रिय होने से मिलने वाले प्रेतभाव से छुड़ा ज्ञान रूप समीक्षा से अमृतत्व देव भाव सनातन पद्धति का प्राप्त होता है ऐसा समीक्षार्थ भी त्रिकालदर्शी वेद का है ॥

इस सांख्य मत में मन्त्र का यह अर्थ होगा केवल आत्मज्ञान असङ्ग जन्मजन्मान्तराभ्यास से आदर और बहुत काल तक निरन्तर अच्छी तरह अभ्यास किया और अविद्या अज्ञान भोग पर्यन्त और विवेक ख्याति पर्यन्त दोनों साथ अथवा अपने२ कर्म के साथ जानता

तायां पुनर्मृत्यंतीर्त्वा पुनर्जन्मानुत्पत्यान स पुनरा वर्त्तते इति संवादेन केवलात्मभाव लक्षणया विद्ययानेनास्ति न ममेत्यवंविधयावा अमृतं मोक्षमश्नुते प्राप्त पूर्वोविप्रकृतिसङ्गत्यागेन कण्ठचामीकरन्यायात्प्राप्तइव भवतिमुच्यतेतु वन्ध सामानाधिकरण्यात्प्रकृतेनासंगचेतनो नजीवोवद्धो वा मुक्तोवा वैयधिकरण्या द्बन्धेनेति भावः विज्ञानभिक्षु मते अविद्याम- ज्ञानमलङ्ग बिम्बस्य विद्यां तज्ज्ञानं विवेकख्यात्या उभयंसहवेद जानाति प्रतिबिम्बोऽसौ रागस्य बीजरूपस्यदाहे कर्मान्तरो भोगाप्राप्तौ पूर्वस्भो- पभोगे सतोपिच दग्धवीजस्योवर भूमौ स्वयाजनकत्व वदुपभोगा जन- कत्वादअविद्यया प्रतिबिम्ब वन्धज्ञान लक्षणया मृत्युतमेतंतीर्त्व विनाशेन

है वह अविद्या भोग रूप करके प्रारब्ध क्षय से और बाकी कर्मों के आवृत होकर सूक्ष्म रूपसे प्रकृतिमें लीन होने से फिर प्रारब्ध के दग्ध बीजकी तरह ज्ञान प्रभावसे नष्ट होजानेसे मृत्युतर करयाने पुनर्जन्म होनसे केवलात्म भावना(में करता नहीं न कर्महैअलङ्ग मेरा कौन है)इस से अमृत याने मोक्ष को पहले प्राप्त भी प्राप्तकी तरह होता है ॥ ७ ॥

विज्ञान भिक्षु के मत में अविद्या अज्ञान विद्या अलङ्ग बिम्ब का आत्मा का बिम्ब प्रतिबिम्ब की विवेक ख्याति से समझना यह दोनों जिस की अकल के भीतर हैं वह प्रतिबिम्ब के राग रूप बीज दाह से कर्म भोग से छूट कर प्रारब्ध का भोग से नाश कर अविद्या प्रति- बिम्ब बद्ध है इसी तरह के सत्यानृत रूप प्रतिबिम्ब ज्ञान से मृत्यु को तर कर याने पुनर्जन्म को तर कर विद्या याने विवेक ज्ञान से (अ)पुनरावृत्ति रूप मोक्ष को केवल बिम्ब रूप बन जाने से अन्तःकरण सूक्ष्म प्रकृति रूप बनकर पुनः अन्तःकरण को पैदा न करना इत्यादि रूप मलक बिम्ब रूप को प्राप्त करने से होता है।

तिरोभावेन विद्यया विवेक ख्यात्माऽपुनरावृत्ति लक्षणं मोक्षममृतं चिन्म रूपं सूक्ष्म प्रकृति रूपं चान्तःकरण जननाद्यक्षमं परस्परा सक्तमश्नुते प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ८ ॥

योगमते अविद्यां वृत्ति सारूप्यं विवेकख्यात्यधिकं विद्या मसंप्रज्ञातसमाधि रूप स्व स्वरूपावस्थानमुभयंयोवेद स इकर्मणा व्युत्थान कालिकेन सोऽविद्यया विवेकख्यात्यावैराग्याभ्याससाधितयामृत्युंवृत्तिं तीर्त्वा मरणशालिनीं प्रकृतेरसक्ततायाः स्व स्वरूपावस्थितत्वादन्यत्तं मुक्तिविद्यया समाधिनाऽश्नुतेऽत्यन्तं व्युत्थानरहितो भवति देहपाते इत्यर्थः ॥ ९ ॥

योगमत में इस मन्त्र का यह अर्थ होता है कि अविद्या याने वृत्ति के साथ सारूप्य विवेक ख्याति तक विद्या असंप्रज्ञात समाधि में अपने ही रूप से देखने से विद्या अविद्या दोनों को जो जानता है वह अविद्या याने विवेक ख्याति वैराग्याभ्यास की बनी वृत्ति से मृत्यु भासक्त प्रकृति के स्वसमान रूपता (अपनीसी) वृत्ति को छोड़ कर विद्या ज्ञान असंप्रज्ञात समाधि के केवलात्म दर्शन से सिद्धि में न फस कर अत्यन्त (फिर जिस में व्युत्थान न हो ऐसे स्थिरभाव में होने वाले) मोक्ष स्वरूप स्थिति को पाता है ॥ ९ ॥

याज्ञिक मीमांसक मतमें आत्मा नित्य स्वरूप जीव का न जानना और कर्म यह अविद्या और वेदान्ति आदि से विलक्षण उसी आत्मा का विधि वाक्य शेष रूप से देख कर वेदायुक्ति धर्म कर्म आचरण करना यही विद्या जिससे यज्ञदेवता आत्मा का ठीक २ ज्ञान हो दोनों को जो जानने वाले यज्ञवेत्ता कर्म से अपूर्व पैदा कर मरणोत्तर उस स्वर्गरूप नित्य मोक्ष रूप को उस अपने कर्म और नित्यात्म स्वरूप

यज्ञमीमांसक मते आत्म ज्ञानमविद्या वेदान्त्यादि भिन्ना केवल कर्मलक्षणा विद्या विधिशेषस्यात्मनो नित्यत्व स्वर्गोपभोगयोग्यत्वादि लक्षणा इत्युभयं सह वेदतथात्मज्ञान पूर्वकमोदशोऽमत्राधिकारीति नास्तिकाधुनिक वेदान्त्यादि विलक्षणात्मविदः कर्मदेवतादि स्वरूप सहित यज्ञविदस्ते कर्मणा सहैव तज्जनिता पूर्वेण विद्यया नित्य सुखोप भोगयोग्यात्म ज्ञानेना योग्यत्वा शक्यत्वादि चिन्ता रहिता मृत्युंतीर्त्वा मरणानन्तरंसुखमात्यन्तिकं स्वर्गलक्षणमश्नुवते इत्यर्थः शतक्रतोरपुनरावृत्तिमुक्तिस्वर्गमाहुर्वैदिका यज्ञविदोऽपाꣳसोममस्रता अभूम इति ॥९॥

शां॰भा॰ यतएवमतोऽविद्यांविद्यांच देवताज्ञानं कर्मचेत्यर्थः यतस्तदुभयं सहैकेन पुरुषेणानुष्ठेयं वेदतस्यैवं समुच्चयकारिण एकैक पुरुषार्थ

आदि विद्या के प्रताप से प्राप्त कर लेता है शतक्रतु का फिर संसार मनुष्य लोगों में जन्म नहीं इस मीमांसक मत के अनुकूल यह अर्थ हुआ ॥ १० ॥

शङ्कर भाष्य के अपनी टीकानुसार अर्थ करने से मन्त्र का ऐसा भावार्थ है कि जो विद्या देवता ज्ञान और कर्म दोनों को साथ ही साथ एक ही पुरुष से संपादन करने लायक जानता है इस तरह समुच्चय से उसके करने वाले को एक २ फल अवश्य होगा जो कि अविद्या अग्निहोत्र शब्द से मृत्यु और स्वाभाविक कर्म ज्ञान दोनों को अतिक्रमण कर विद्या से देवता भाव तत्स्वरूपता को प्राप्त करता है सप्तम भूमिका से पहले प्रवृत्ति चक्र (जो कलियुग में जरूरी है) में पड़े हुए को अवश्य प्राप्त है बाध सामानाधिकरण्य से होताही है ११

माध्व मत में इस का यह अर्थ होगा कि हरि परमात्मा हमें पितृ मित्र स्वामी आदि भाव से सेव्य है हम उसके सेवक हैं यह ज्ञान

संबन्धः क्रमेणस्यादित्युच्यते अविद्यया कर्मणाग्निहोत्रादिना मृत्युंस्वाभाविकं कर्मज्ञानंच मृत्युशब्दवाच्यमुभयंतीर्त्वाऽतिक्रम्य विद्यया देवता ज्ञानेनामृतत्वदेवात्मभावमश्नुते प्राप्नोति तद्धयमृत मुच्यते यद्देवतात्मगमनम् ॥ ११ ॥ १०

टी० मीमांसक व देव कर्मणो देवता ज्ञानस्य स्वर्गि देवतास्वरूप मायफलं समुच्चित्याहाज्ञस्य ज्ञानिनश्च सप्तभूमि प्राक् प्रवृत्त चक्रगति स्य भगवान् शङ्करार्याचार्य इतिध्येयम् ॥ ११ ॥

माध्वमते विद्यांज्ञानं हरिपरमात्मासेव्यो वयं सर्वात्मना पितृपुत्रमित्रादि भावेन तस्यस्वामिनः उपासका इति भेदेन यथा तथ्येनपरमात्मन आत्मनः हेयस्यच तथात्वेना अस्य विद्य मविद्यां हरिभक्ति पूर्वक तद-

---

विद्या और हेय प्राकृतबन्ध अविद्या और उन (प्र) परमात्मा हरि की विद्या भक्ति ज्ञान को साथ २ ही ज्ञान कर्म समुच्चय अङ्गाङ्गि भाव से जान कर शास्त्र विदित हरि भक्त्यनुकूल कर्मानुष्ठान करते हुए अविद्या हरि भक्ति शास्त्र विहित कर्म करते हुए मृत्यु थे यमदूतों को भी जीत कर हरि कृपा से अप्राकृत दिव्य देह लीला प्राप्त कर जिस से फिर नीचे दर्जे में न आयें ऐसी सालोक्य सामीप्य सारूप्य रूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

भट्टभास्कर मत में ऐसा अर्थ होगा कि विद्या भेद और अभेद से स्थित आत्मा हरि को जानना अविद्या (अ) हरि का भक्ति दीक्षा मन्त्र ग्रहणादि से वैदिक स्मार्त्त सब तरह के शास्त्रोय कर्मों का अनुष्ठान सब प्रधान भाव से जो जानते हैं वह कर्म से यमलोक जीत कर मरण के बाद भेदाभेद ज्ञान रूप विद्याके प्रभाव से अनन्द लीलाकृत देहों से सामीप्य सालोक्य सारूप्य सायुज्य तक भक्ति तारता से उन के फल मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

पंनंकर्मणः शास्त्रविहितस्यानुष्ठानं यउभयंसह समुच्चित्य ज्ञानकर्मणो वेदसोऽविद्यया कर्मणा मृत्युंतीर्त्वा यमदूतानपि जित्वा मरणानन्तरं हरिकृपा समासादित प्राकृतलीला वपुषा अमृतम पुनरावृत्ति लक्षणं सालोक्य सामीप्य सारूप्यान्तं मोक्षमश्नुते प्राप्नोतीति भावः विशिष्टाभेदात्मक सायुज्यस्य भेदतुल्यत्वात् विशेष्यभेदरूपायास्त्वप परमभक्तेरभेदभावनामात्र यतनशीलस्यास्य मतेरभाव इति विभावयन्तु सुधियः॥ १२॥

भट्टभास्करमते 'विद्यामभेदे न भेदेन चरितत्व नं अविद्यामस्यहरे विद्यांभक्ति लक्षण दीक्षादिपूर्वकं तन्मन्त्रादि न सहवैदि कस्मा-

---

निम्बादित्य के मत में विद्या याने विवर्त्त भेद अभेद ज्ञान व्यवहार से परमार्थ से सच्चे रज्जू में सर्प की तरह अनादि भेद का मुक्ति में नाश होने से अनन्त कल्याण गुण हरि के साथ अभेद होने से ऐसा अर्थ होगा कि (अ) हरि की विद्या विवर्त्त भेदा भेद ज्ञान स्वीकार पूर्वक हरि की भक्ति मन्त्र दीक्षा वैदिक स्मार्त्त सब तरह के कर्मों का अनुष्ठान और विद्या ज्ञान दोनों सम प्रधान भाव अङ्गाङ्गि भावसे जो जानता है(अ)हरिकी विद्या के प्रताप से यमको भीतर कर और मरणान्त में सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य तक अपुनरावृत्ति (फिर जिस में न लौटे जन्मान्तर भी शायद होय भी तो वैष्णवों में ही) ऐसी मुक्ति को प्राप्त होता है और भक्ति के तारतम्य से जीवन्मुक्ति का तारतम्य है और अप्राकृत दिव्य देह से लीला भोग की उपलब्धि होती है और सायुज्य में पारमार्थिक ही माया से विवर्त्त रूप व्यवहार काल के भेद का नाश होता है वह भी लीलातिरिक्त माया के प्रवर्त्तक अनन्त कल्याण गुण हरि का ऐक्य जो पारम-

र्वसर्वं विधशास्त्रीयधर्मानुष्ठा नंसहसमुच्चित्य समप्रधान भावेन वेद वेत्तिय: सोऽविद्यया कर्मणामृत्युंतोर्न्यायममपिजित्वा मरणानन्तरं च विद्ययाभिन्ना भिन्नज्ञानभक्ति प्रभावा ल्लीलाविग्रहोऽप्राकृत भोगानी हितान् भुञ्जन्सालोक्य सामीप्यसारूप्य सायुज्यान्तमपुनरावृत्ति लक्षणं मोक्षमश्नुते प्राप्नोति इतिभाव: एषावेद न्तसंमतामुक्ति र्नास्तिनच तथा भूतब्रह्मेति मायाविशिष्टानन्त कल्याणगुणहरि स्वीकारादि तिदिक्॥१३

निम्बादित्यमते विद्यांविवर्त्तभेदाभेद ज्ञानंव्यावहारिक परमार्थ सद्रज्जुभुजङ्ग तुल्याना दिभेदस्यमुक्तौनाशेन सायुज्यात्म कायामनन्त कल्याण गुणैर्यभेदस्यस्वीकारात् अस्य विद्याहरेर्भक्ति दीक्षयाप्रिय पुत्रादि भावपूर्वकंत दर्पणवैदिक सर्वविधस्मार्त्त कर्मानुष्ठा न मुभयंसह

विक है जीवकोटि वाले का सत्य संकल्प भगवान् के साथ है भी भेद नाश होने से केवल रह जाता है शाङ्कर को तो निर्गुण लय अभि· प्रेत है भेद त्रिकाल वाध्य है ऐसी सूक्ष्म दृष्टि से देखने लायक बहुतसा भेद है ॥ १४ ॥

रामानुज के मत में इस मन्त्र का यह अर्थ हो सकता है कि विद्या विशिष्टा द्वितीय ज्ञान और अविद्या समाश्रय लेकर आज कल सब जाति के बावा खाखी लशकरी आदि का सीतलप्रसाद खाकर शरण मन्त्र लेना भी वैदिक स्मार्त्त सब तरह के कर्म आचरण करते हुए हरि भक्ति करना दोनों साथ ही साथ दोनों मीमांसा को एक शास्त्र मानने से कर्म ज्ञान का अङ्गाङ्गि भाव ले गुण प्राधान्य भाव से समुच्चय जो जानता है वह कर्म भक्ति के प्रसाद से यम को भी जीत कर और मरणान्त में भी अमृत अपुनरावृत्ति रूप सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है भक्ति तारतम्य से जब·

समप्राधान्येनाङ्गाङ्गिभावेन वावेत्तिय: सोऽविद्ययामृत्युं तीर्त्वायम-मपिविजित्यमरणान्ते च सालोक्यसामीप्यसारूप्य सायुज्यान्तां मुक्तिमपुनरावृत्तिलक्षणा ममृतमश्नुतप्राप्नोति एषामविपूर्ववञ्ज्ञा न कर्मसमुच्चयाभेदाभेद ज्ञानदीक्षयाजीवन्मुक्तिः भक्तितारतम्येन सायु-ज्यान्तामरणे चा प्राकृतलीलावपुषादिव्य भोगोपलब्धिरनन्त कल्या गुणद्वयं भेदान्ता भेदस्यनाशो प्रतान विवर्त्तमानस्ययायया भगवल्ली-लया प्रकृतपरमार्थ भेदसमानयोग क्षेमता भेदस्याभेदस्तुव स्तविकोव्य-वहारे पिनतुमायाप्रभा वादनन्तकल्याणगुणद्वारमित्थयति वक्तुं शक्यते सहिजीवकोटिमनापन्न: प्राकृता प्राकृतसकलस्रष्टा दैवीह्येषागुणमयी-यादुरत्ययत्यनेनसंवादात् योगमायामुपा श्रिताइति भागवतेपि अगमाया

न्मुक्तावस्था में रामदुलारा आदि और बाद अप्राकृत दिव्य देहों से हरि के सुखोपभोग को करता है ॥ १५ ॥

वल्लभ मत में इस का अर्थ होगा कि विद्या हरि परमात्मा नित्य भी एक ही अपने ही निर्गुण हुआ भी अपने स्वरूप हो लीला से सगुण भी चेतन भी जीव भी परमात्मा भी जड़ भी सभी रूप परिणत हुआ विलास गोपी लीलादि करता है इत्यादि शुद्धा द्वितीय ज्ञान और (अ) की विद्या भक्ति पुष्टि २ रूप ब्रह्मसंबन्ध शरण मंत्रादि लेकर गोपिओं की तरह अत्यन्त प्रेम होना आचार्य के लेख से वैदिक स्मार्त्त सब कर्म आचरण करता हुआ (पुरुषोत्तम शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड कर्त्ता के लेख मुताबिक वेद भागवतगीता व्यास सूत्र के बताये कर्म करने का ही अधिकार है वह इससे ज्यादह नहीं मानता परन्तु मन्त्र और दीक्षा प्रक्रिया सब तन्त्रही के हैं यह गुप्ति है) दोनों कर्म ज्ञानके समुच्चय के साथ जानता है वह अविद्या कर्म से यम को भी जीतकर

मायायागुणाश्रितोयः ससर्जेति प्रोक्तमितिविशेषः शाङ्करेतुनिर्गणेमाया-विवर्त्तागुणअपिमायामया अप्राकृताएषेते ऽपिनजीवोयाभगवल्लीला कृता अपितुस्वाभाविका इतिब्रह्ममुक्त्योःशाङ्करीययोर्महान् भेदः सूक्ष्म तमःइतिध्येयम् ॥ १४ ॥

रामानुजमते विद्यांविशिष्टा द्वितीयस्थूल सूक्ष्मचिद् चित्का-र्याभिन्न सूक्ष्मचिद्चिदात्मककारण विराट् सूक्ष्मचतुर्व्यूहनारायण भिन्नविग्रहविशिष्टा द्वितीय मायाविशिष्टाचिद द्वितीय भक्तिज्ञान कस्यहरे रहस्यविद्यासमा श्रयणपूर्वकं वैदिकस्मार्त्त सर्वविध धर्मकर्मानु-नुष्ठानं चोभयं सहवेद पूर्वोत्तर वेदमीमांसाकाण्डयो रेकशास्त्रत्वज्ञान पूर्वकं समप्राधान्येनाङ्गाङ्गि भावेन वावेदवेत्तियः सोऽविद्यया कर्मणा मृत्युंतीर्त्वायममपि विजित्य मरणान्ते चा अमृतम पुनरावृत्ति लक्षणा

पुष्टि २ के आनन्द लेता। मरणे पर भी अप्राकृत देह से सालोक्य सामीप्य सारूप्य में आनन्द भोगता सायुज्य तक (जिस में पुनरा वृत्ति न हो) लेलेता है कुलीशपाशुपत मतमें इसमन्त्र का यह अर्थ होगा पशुपति मेरा स्वामी ऐसा भेद ज्ञान अविद्या कर्म उसी स्वामी की अर्चा आदि वैदिक स्मार्त्त सत्कर्म परायणता दोनों को साथ ही जो जानता है वह सत्कर्मों के प्रसाद से मार्कण्डेय की तरह यम को भी जीत कर मरणान्त में भी पशुपति सामीप्य सालोक्य सारूप्य प्राप्त कर उसी भगवान् के तत्वज्ञान होने से अपुनरावृत्ति रूप मोक्ष को प्राप्त करता है शैव मत में अभेद ज्ञान विद्या है और सायुज्यान्त मुक्ति है भगवान् को स्वातन्त्र्य है इतना विशेष है ॥ १८ ॥

माहेश्वर मतमें इस मन्त्र का ऐसा अर्थ होगाकि विद्या सर्वात्मा महेश्वर अपने २ अदृष्ट से जगत् पैदा कर उस के उपभोग संपादन

सालोक्यसामी प्यसारूप्यसायुज्यान्तां मुक्तिमधुनैं प्राप्नोति एषामपि पूर्ववन्नशाङ्करसंमत ब्रह्मनिर्गुणमन्ततो मायावच्छिन्नोऽप्यनन्त कल्याण गुणस्यस्वीकारान्ना पिप्रथा भूमामुक्तिः भक्तितारतम्येन च प्राकृतेन जीवतो मृतस्य हरिसमान लोकतादि कनाप्रकृतवपुषा सायुज्यं सूक्ष्मे तद् द्वारा मायाविशिष्टे चेति भावः ॥ १५ ॥

वल्लभमते विद्यामभेदेन सगुणः स्वाभिन्नलीलाख्यया शक्त्या निर्गुणश्चस्वरूपतः प्रकृत्या प्राकृता लीलयास्व भिन्न मेवचिदात्मकं प्रकृतिद्वाराजडात्मकंचभजति परिणामं मित्यन्ततो हरिरूपमित्यादिज्ञानं अस्यविद्याऽविद्याचहरिपुष्टि पुष्टिभक्तिदीक्षाब्रह्मसंबन्धनकृष्ण शरण तात्मनात्मोपोना मिवपरम प्रेमातितत्परत्यागा योग्यस्तथात्वेन सकल स्यवेदः श्रीकृष्णवाक्या निव्यासस्सूत्राणि वैदि समाधिभाषा व्यासस्य

करता है पहलों की तरह बिना अदृष्ट नहीं और अविद्या अज्ञान याने शास्त्रीय सत्यकर्म वैदिक स्मार्त्त आचरण करते हुए सर्वथा महेश्वर परायण हो उसकी ही भक्तिचर्या में लगना दोनों जो इकट्ठे जानता है वह अविद्यासे मृत्यु यमको भी मार्कण्डेय उपमन्यु आदि की तरह हटा कर और मरणान्तमें भी अपने २ अदृष्ट भक्त्यानुसार सदा शिव के सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य तक प्राप्त करता है ॥ १९ ॥

प्रत्यभिज्ञावादि शांभव के मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होगा कि विद्या शक्ति शिवा भिन्न संविद् रूप यही स्पन्द रूप जगत् है कारण कार्य का अभेद होने से सो हमें ऐसी प्रत्यभिज्ञा होनी चाहिये स्त्री (सा+उ+अहम्) ऐसा अर्थ समझे कि मैं वही शक्ति भैरवी था आद्य कुमारी हूं स्पन्दात्मक सब मुक्त नित्य संविद् का स्वरूप है पुरुष (सः+अहम्) ऐसा अर्थ समझे कि मैं वही शिव भैरव हूं

प्रमाणंतच्च तुच्छयमितिपुरुषोत्तमोक्तप्रमाणमनुसृतानां तदाचार्यानुसा-
तरिणांवेदस्मार्त्त प्रमाणग्रन्था नामालोचनयालब्धस्यधर्म कर्मणोऽनुष्ठानं
मुभयं सहसमच्चित्यसम प्रधान भावेनाङ्गाङ्गितयावा वेदवेत्तिय: सोऽ-
विद्ययाकर्मणामृत्युंतीर्त्वाय मंविजित्यनहिहरिभक्तानां कृत्याकृत्यनिरीक्ष-
णेयमाधिकार इतिबहुशो भागवत दावपिसं वादोयमजामिलाद्यतिशयो-
क्तिप्रस्तावेनषष्ठे चवर्णितोयंवेदार्थ इतिभावान्मरणान्ते च हरिभावं
सारूप्यंसालोक्यंतादृशानां प्राथमिकगोलोक वर्त्तिहरिमूर्त्तिसमोपेसा
युज्यंतेनचिन्मात्रताहरिणातदद्वारा चिन्मात्रहरिमात्रतेति समावेदयति
अपुनरावृत्ति लक्षणंमोक्षम् इतिभाव वेदान्ति सम्मतकूटस्थनित्य नि-
र्धर्माल्हमायाविलास कृताविद्यापरिणामतदधिष्ठा न त्वलक्षणलक्ष्य
ब्रह्मतादृशमुक्तिस्वीकारोनैषां ज्ञानकर्म समुच्चयश्चेतिध्येयम् ॥ १६ ॥

नित्य संवित् उद्यम भैरव से लेकर सब जगत स्पन्दात्मक मेरा ही
स्वरूप है शिवलिङ्ग और शक्ति लिङ्ग (शिश्न योनि) यह शिवदेवीही
तो सब का स्वरूप और उत्पादक परमात्मा का स्वरूप है अविद्या
अज्ञान याने कर्मस्पन्द भक्ति रूप प्रत्यभिज्ञा और महा विद्यादि मन्त्र-
दीक्षित होकर उन्हीं महाविद्या भैरवादि के शांभव प्रकारों से पाषा-
णादि मूर्त्यादि में यन्त्रादि शिवदेवी आदि में बजरौली क्रिया
नाभि होमकुण्ड गोलोद्धारादि पञ्चतत्व पूजा विधान संक्षिप्त विस्तृत
आदि पद्धति से पूजन दोनों ज्ञान और कर्म को मिला कर जो पेसा
जानता है वह सत्कर्म वैदिक स्मार्त्त शाम्भवादि के प्रसाद से य
को भी जीत कर सिद्धि और मरणान्त में भी भैरव भैरवी शिव श
आदि सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य से उसी भक्ति फल
दिव्य देहसे पाकर अपुनरावृत्ति कोळास्वरतरनहि वैदिकवैष्णव शैवमा

नकुलीशपाशुपतमते विद्यांशानं भेदेनपशुपतिरेषममस्वामीत्यति सुदृढामक्तिरशैवस्याभेदेना विद्याऽज्ञानं कर्मलक्षणंपरिचर्यानितरां तदुपचा रपरायणतयावैदिकस्यार्त्तधर्माचरणपरायणतायस्तदुभयं सहसमुच्चित्य वेद अविद्ययाकर्मणामृत्युंतीर्त्वा मार्कन्डय इत्ययममपि विजित्यमरणान्ते च पशुपतिसामीप्यसालोक्य सारूप्यंमूर्त्तिसमीपे च वाप्य सायुज्यान्तं मूर्त्तेः विद्ययाज्ञानेनामृतमपुनरावृत्तिलक्षण मोक्षमश्नुते प्राप्नोति जाकिं- कवज्जोवेश्वरभेदो मक्तौतुविशेषः शरीरान्तः करणयोर्लयरूपः सा- युज्य ईश्वर निमित्तकारणता मायाशक्त्यालीला रूपाविद्या प्रकृति भेदेन सृष्टिप्रक्रियापशुपतिर्जीवः स्वाभिमक्या पाशरूपाज्ञाननि- वृत्तोभवति इतिदिगधिकंमृगेन्द्र संहितादा ववसेयम् शैव नाममेद सा- युज्यान्तमुक्तिरत्रविशेषः ॥ १८ ॥

दक्षिणग्राम सिद्धान्त कौल सातों वेद कमेटी में कौल से परे मन्तरङ्ग कमेटी सब अधिकार रखने वाली कोई नहीं उससे न लौटता मुक्ति को पाता है ॥ २० ॥

शाक्त मत में इस मन्त्र का अर्थ यह होगा कि विद्या महा विद्या सब को पैदा करती है और सब को पालन करता है वही सब के अभीष्ट के देने वाली है वही महालक्ष्मी आदि शक्तित्रय वही दश महाविद्या स्वरूप अनन्तानन्त संसार उसी के संतति रूप से भारम- कोटि के हैं अविद्या अविष्णु को त्रिद्या सात्विक पालन करनेहारी मुझे उसके आचरण भक्ति कल्प व वैदिक स्मार्त्त सत्कर्म पद्धत्यनुसार करना दोनों सह साथ कर्म के समुच्चय करता है यह अविद्या सत्कर्म सहित उस पालन शक्ति के प्रसाद करके यम आदि को भी जीत अभीप्सित फल पाता है और मरणान्त में उसी के दिये अभीप्सित

माहेश्वरमते विद्याज्ञानं सर्वात्मा महेश्वरोऽदृष्टवशात्स्वस्वजगज्जनयति इतिएवमवगत्यन्यायकारिणोऽभीष्ट भक्तिफलदातुस्तस्यशरणंतद्भक्तेः सर्वथा समाश्रयणमविद्याज्ञानं कर्मशास्त्रोयंतदनुष्ठानंयस्तदुभयं सहसमुच्चित्य वेद जानाति अविद्ययामृ यंतीत्वीयम मपिविजित्य मरणान्ते च सदाशिवसालोक्य सारूप्यसामीप्यसायुज्या न्तमवाप्नोत्येषां पूर्ववदेवसर्वाप्रक्रियाऽदृष्टैः सहकारिभिः सृष्टो हेतुतान पूर्वस्वतन्त्रास्याभेदोभेदश्चपाशरूपा ज्ञानसन्वेपशत्वंस्वामिपरायणस्य पाशबद्धोभवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः इत्युक्त्याशिवाएवजोवन्भस्मरुद्राक्षमालाधरो तदनन्यभक्ति रित्यधिकंमृगेन्द्र संहितायामिति तिदक ॥ १९ ॥

भोगों को भोगता अपुनरावृत्ति गूढ़ागूढ़ लिङ्ग भेद से प्राप्त होता है याने अगूढ़ लिङ्ग (स्त्री) सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य तक पहुंचते हैं गूढ़ लिङ्ग स्वरूप से ही सायुज्यान्त मुक्ति आदि लीला कैवल्य देहों के साथ अपनी इच्छानुसार आनन्द रमण करते हैं फिर सायुज्य आदि शक्ति से होते हैं ॥ २१ ॥

साहित्य मत में विद्या रस ज्ञान सुहृदयमात्र को ही होता है वही अज्ञान याने विष्णु रूप रसा वा शब्दज्ञान अथवा उस शब्द से रसा स्वाद क्रम को अथवा उस भगवान् कृष्ण रामादि नायक का भेदा पोह रसानुकूल ज्ञान हरि कथा दृश्य श्रव्य दर्शनाश्रवण वैदिक स्मार्त सत्कर्मानुकूल के साथ समुच्चय कर जानता है वो यहां भगवान् के प्रसाद से यमादि जीत कर आनन्दोपभोग करता अलौकिक लौकिक मरणान्त में भी रसरूपवान नारायण आदि देव के साथ सायुज्य तक अपुनरावृत्ति रूप मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

प्रत्यभिज्ञादार्शनिकमते विद्याशक्तिशिवात्मा भिन्नंसर्वं कारण कार्ययोरभेदा नित्यसंविद् स्पन्दरूपसर्वं स्यजगत इति सोऽतितिप्रत्य भिज्ञाअविद्याऽज्ञ नंकर्मतद्भक्ति प्रत्य भिज्ञानंत न्मत्रद क्षित नतदर्चानु- ष्ठानादिभिनप्रकारेण तदन्तरस्य सर्वस्यतदु सर्वस्यवाज्ञानइति मन्त्र गङ्गावजरोलिक्रियादि विधिपूर्वकलिङ्गमूर्त्त्यर्चातद्विवरणं शक्तिसंगम। तन्त्रेसउभयं सहसमुच्चित्यवेद जानातिअविद्ययामृत्युंतीर्त्वायममपि सभक्तिवैदिक स्मार्तसर्वविधतत्क्रमेणविहित धर्माचरणे न मरणान्ते बयममपि विजित्यसारूप्यसालोक्यसामीप्यसायुज्यान्तं भैरवभैरवोशिव शक्त्यात्मनाजायतेऽपुनरावृत्तिलक्षणं सर्वेभ्यश्चोत्तमावेदवेदेभ्यो वैष्ण वंमतंवैष्णवादुत्तमं शैवंशैवाच्छाक्तंद्वयोरुत्तमम् दक्षिणादुत्तमंवामंवा मात्सिद्धान्त मुत्तमंसिद्धान्ता दुत्तमंकौलंकौलात्परतरंनहीत्युक्त लक्षवैदिकसंसदन्तरङ्गत्वमेव तदमृतमश्नुते प्राप्नोति ॥ २० ॥

यहां यह समीक्षा करनी चाहिये कि कैवल्य शब्दतो सभ हट कर एक जब तक न हो तब तक कैसे होगा परम मुक्ति के विना अशरीरंवावसन्तं प्रिय प्रिये नस्पृशतः अशरीर होने में प्रिय अप्रिय दोनों नहीं यह श्रुति का कहा मोक्ष तो नहीं घटसकता सांख्य और तार्किककी मुक्तिमें भी सुखदुःख भाव तो है परन्तु प्रकृति मन वे भी नित्यमानते हैं कैवल्य शब्द का अर्थ उनके मतमें भी नहीं घट सकता परमात्मसायुज्यतक जिन की बुद्धि थक गई उनके मत में भी पर- मात्मा को कैवल्य हुआ आत्माका नहीं इससे समीक्षक का ऐसा अर्थ है कि माया विशिष्टरूप शकाआश्रयाभेद मानने से शुद्ध पदार्थकाही षरोऽयांशनिर्विशेषा द्वितीय (सजातीय विजातीय स्वगत भेद शून्य नित्यमुक्त होना सभ मिथ्याविशेषणांश का निषेध यह विद्या अविद्या

आप्तमते विद्याविज्ञानंशक्तिरेवस्त्रंजनयति पालयति सर्वंमनो-
प्सितं ददातिफलमिति तदीयाभक्तिस्तत्परायण तातांड्गिमहाविद्यांद्विधाभूतांत्रयो रूपांसमाचक्षते शास्त्रतत्वविदः तामस्यांविद्यामविद्यां
वैष्णवींपालनींसातत्त्विकीं वैष्णवोयोवेत्तिसदाचारेण समुच्चिवस्यवैदिकीं
स्मार्त्तिकीं पद्धतिमाश्रित्ययन्त्रादौपूजयतिध्यायति सच्चिदानन्दरूपिणीं
सोविद्ययामृत्युंतीर्त्वाय ममपि विजित्यमरणान्तेच जीवंश्चमातृपालितः
शाक्तः मातृदत्तया सर्वविधयाशक्त्यासंपन्नैश्वर्यीभोक्तोतान्भुङ्क्तेभोगान्
अपुनरावृत्तिलक्षणान् अमृतपदवाच्यान् सामीप्यंसालोक्यंचयगूढागूढ-
लिङ्कःकन्यापत्रादि रिविवमातृ नमीपचनारूप्यंवा गूढलिङ्गोजना
सायुज्यं तु अन्तेतृतीयलये दिनेषामिरि तिदिक् ॥ २१॥

साहित्यमतेविद्यां रसज्ञानंसक्रदवैनमात्रज्ञानंतदेव अस्यज्ञानं
विष्णुरूपत्वाच्छब्द कलापस्य यज्ञातस्यज्ञानवज्जन्यनित्यत्वादिवि लक्ष-

---

अविद्या माया विलास रूप सप्तमभूमिका तक लेशा विद्या वाध
समानधिकरण भक्ति से देवी शिव विष्णु भैरव गण व सूर्यादि
परमात्मा के विशेषणांशधर्म ज्ञान वैराग्यैश्वर्यरूप शुद्ध पदार्थ के
अभेद की निर्विशेषपर्यवसायिशुद्धाद्वैत रूप हो कर सोहं प्रत्य भिज्ञा
पुष्टि२ भक्ति से वैदिक स्मार्त्त सत्कर्माचार करना दोनों साथ २ जो
जानता है उस कर्म भक्ति के प्रसाद यमको भी जीत सर्व देव प्रभाव से
इस और परलोक में सम देवता भक्तय नन्द और सालोक्य सामीप्य
सारूप्यसायुज्य आनन्द गूढा गूढ लिङ्गरूप से यथोचित करता देव्यन्त
सायु ज्योत्तरनिर्विशेषमात्र शुद्धा द्वितीय विशेषणांश होन होता है २२
वैशेषिक मत में इस मन्त्र का अर्थ यह होगा कि जो देहाद्यति
रिक्त आत्मा न मानने वाले चार्वाक हैं अथवा अभाव से भावोत्पत्ति

णात्मकत्वेन तदनन्यत्वं तदीयत्वादकर्म सालम्बनं यद्वा लम्बनत्वहरेरस्य विद्याकृष्णादेस्तादात्म्येनभेदापोहेन रसत्वादीयथिकगन हरिकथा भषणाद्यानादि वहलवैदिक स्मार्त्तसर्वं विधसत्कर्माचरणं च सहसमुच्चिन्तदेद्ज्ञानाति सहामुत्रहरि प्रतापाद्विजित्य यममपि अमृतम्मोक्षंसारूप्यसालोक्यसामीप्यं विष्णःसायुज्यान्तमश्नुते अपुनरावृत्तिलक्षणमिति दिक् ॥ २२ ॥

अत्रेदंसमोक्ष्यं न खलु कैवल्यशब्दः सकल निषेधेनैकवस्तुभावमाप्यपरित्यज्यान्यत्रक्वाविघटतेनापि अशरीरं वा वसन्तं प्रियाप्रियैनस्पृशत इतिनित्यमुक्तिस्वरूपं परममुक्तिफलान्तंक्व चिदन्यत्रवादे संघटते सांख्यतार्किकयोस्तथामुक्ता वुपपत्तिःकथंचिन्नतुसम्बन्धिनः प्रथमानुरक्तस्यमनः प्रकृत्यादेर्वर्जनंतन्मतेऽपि परमात्मसायुज्यवादिनां च परमात्मकैवल्यंनात्मकवल्यं तत्रलयाद्गामायाविशिष्टविशेष्यात्मक निर्वि

मानने वाले (मायावादि) शून्यवादि बौद्ध वे सभ नारको हैं उनसे अधिक वे हैं जो सत् रूप से सभ को मान कर प्रकृति जड मय सभ मान रहे हैं ॥ १ ॥

गौतम मत में भी इसका यही अर्थ होसकता है कि शून्यवादि बौद्ध नारक हैं उनसे बढ कर वे हैं जो अदृष्ट सद्वाद जड प्रकृति वाद में लगे हैं ॥ २ ॥

दोनों की एक वाक्यता से प्रचलित तार्किक मत में इसका अर्थ यह है कि परमात्मा का शास्यदेहातिरिक्त न मान कर सर्व शून्य कहने वाले नास्तिक नारक कोटि के हैं उन से भी बढ कर वे मीमांसक हैं जो अनादि जगत् मान कर्त्ता को त्याग कर सद्वाद मानी-

मेषाद्वितीयसजातीयविजाती यस्वगतभेदरहितनित्यमुक्त भावसकल-मध्यात्वरूपनिषेधप्रत्ययो विद्यनाम विद्यामाया विज्ञासात्मकसप्तम भूमिकान्तलेशा विद्याबाधसामानाधि करण्येनभक्तेमायविशिष्टमा-आदि देवोशिव विष्णु भैरव गणा सूर्यादिपरमात्मीय विशेषाणांश धर्मज्ञानवैराग्यइश्वर्यात्म शुद्धाभेदविशेषणीयस्वाभेद प्रतियोक्तिबाधो भयरूपशुद्धाभेदेननिर्विशेषपर्यवसाभिसो हमितिप्रत्याभिज्ञाहठरतेनतदी यभक्तिपुष्टिमत्तत्र प्रियतमसर्वदेवोयः दिकरमार्चकर्माणिअविद्यालेशरूपा करज्ञानतस्या सुकत्व तथैव प्रवृत्तिचक्रपतितः अविद्यामत्युंतीर्वै यममपिविजित्य सर्वदेवभक्तिप्रभावेने हामुत्रअमृतंमूणाक विष्णुलोके सूर्यविष्णुगणज्ञान सेका वतारत्वेन नारायणहरि भैरवसालोक्यसामीप्य सारूप्यमुक्ति सायुज्यान्तात्ततः सदाशिवन सत्वप्रधाने नततोदेव्या क्रमे

इसां जगत् सद यह जगत् सत् ऐसा ही चला आया मानते हैं और सर्व सत्तावादि सांख्य हैं और प्रत्यक्ष्यातिरिक्त प्रमाण न मानने वाले चार्वाकादि हैं ॥ ३ ॥

दयानन्द के मत में इसका ऐसा अर्थ हो सकता है कि वे अत्यन्त अन्धे उल्लू आदि की तरह है अथवा जन्मान्तर में भी वैसी योनि के योग्य हैं जो उस भाव सृष्टि प्रक्रिया के न अनुकूल चतुर्वदन आदि मूर्त्ति की पूजा में लगे है उनसे ज्यादह वो हैं जो जीव रामादि अवतार मानकर परमात्म स्वरूप समझ जड़ मट्टीआदि उनकी मूर्त्ति बना गन्ध पुष्पादि खराब करते वेफायदा टाइम जाया करते हैं ॥ ४ ॥

यहां समीक्षा करनी चाहिये ! रामादि हमतो परमात्मा के अवतार महर्षि लोगों के अनुसार मानते ही हैं परन्तु आप साहिब भी

अन्धंतमः प्रविशन्तियेऽसम्भूतिमुपासते ।

ततोभूयइवतेतमो यउसंभूत्याᳫरताः ॥ १२॥

नतत्रतन्मात्रसप्तभूमिकाः स्थतयासह समाधिक्रमेण लेशाविद्यात्यन्तो च्छेदत्रिपुटी लयन्यायेन मुच्यते निवृत्तिचरूपतितस्तु शङ्कराचार्य कल्प- पञ्चमभूमिकास्थः सप्तमप्राप्तोहहै वानेकजन्मसादि तच्चिन्मात्रसमाधि स्त्यक्तत्वर्मा विमुच्यते शुनिर्विशेपर्य वसितत्वात् इतिअपुनरावृत्ति लक्षणं मोक्षमश्नुते निर्विशेषपर्यव सायिशुद्धाद्वितीयं सोहमितिभावयेदि तिवेदार्थैसर्वेषांत्पर्यमितिदिक् ॥ २३॥

अन्धंतमइति वैशेषिकमते नरकं पतन्तितेयेऽसंभूतिमसं भवंदे- हाद्यतिरिक्तस्योपासते अभावाद्भवोत्पत्तिमिच्छन्तः सर्वकारणमात्मानं शून्यं तथेश्वरसाधकासम्भवा पासतेनदेह बुद्ध्यतिरिक्त आत्म इविद- स्ताति नवपरमात्मेति ततोधिकंतेये उइतिवितर्कै संभत्यां संभव विच्

मुक्त जीव उन्हें भी कहे तो भी मुक्त जहां चाहे जासकता है मुंह, आंख, कान, नाक शरीर जो चाहे सो बनता है यह मानने वाले अपने नव मोहल्लास से विरुद्ध मूर्त्ति पूजा खण्डन का झण्डा उठाना कहां से सीखते हैं क्या वो पूजा के वक्त पाषाण में मस्तक आदि वनकर क्या गन्ध नहीं ले सकता या मुंह आदि बन कर बताशा पेड़ा आदि नहीं खासकता क्या वायु पुष्पों स सुगन्धी की नाईं सूक्ष्म जर्रे (परमाणु आदि) मूर्त्ति व उसमें अधिष्ठित तुम्हारे मतके मुक्त रामादि हमारे अवतारों के पास नहीं लेजा सकता वाह तुम्हारा वुद्धि कौशल अपने ही खाने पीने वाले मुक्त आदि मान कर परमात्मा को पूजा को जवाब आप ही देने लगे शरीर से आत्मा को पूजा

प्रकृतरसद्रूपेनासत्किं चिदस्तीतिसर्वं सत्तवादिनः सद्वादे रताअनुरक्ताः प्रतिबिम्बंस्त्रीयामेव छायांवामन्यमाना इतिभावः॥ १ ॥

गोतममतेनरकदुःखवहुलंजन्मेवामुत्रपतन्तितेये शून्यंमभावं तथा ततोपिभूयस्तेये उसंभूत्यामदृष्टे सद्वादेरताइत्यर्थः॥ २ ॥

तार्किकस्योभयोच्छिष्टस्यमते परमात्मा सर्वंचतच्छास्यंनास्तीतिशून्यवादरतायेते नरकानरकगामिना जिनोधिकं च नानोदशंजगदितिसार्वदिकजगत्सतावादिनो मीमांसकाः सर्वसत्तावादि नरवसाङ्ख्या एवंप्रमेयवत् प्रत्यक्षातिरिक्त प्रमाणाभाववादिनः चार्वाकाः योग्यानुपलब्ध्याप्रत्यक्षायोग्यो पाधीनांनिरासेऽपि अयोग्योपाधि शङ्कयाव्यभिचारसंशयादेर्द्दिक्तितेनारकाअनुमानशब्दधीनसिद्धिकपरमात्मधर्माचरणदत्ततिलाञ्जलित्वात्ततोऽधिकंतमसंभावनामात्रेणवन्ध्यादि ज्ञानपापण्या

की तरह पाषाणआदि से परमात्मा की पूजा का किसी तरह खण्डन नहीं होगा और चतुर्वदन का सृष्टि प्रक्रिया के वहिर्मूर्त्ति कहना व्यवहारिक और चिकित्सा की रीति से विरुद्ध है व्यवहार में एक भी चतुर्दिक् मुख करने से चतुर्वदन होसकता है और विकृत गर्भ होने से एक भी चार मुख वाला होसकता है और ध्यान भेद से एक ही शिव वक्त्रमूर्ध हृदय कण्ठलिङ्ग स्थल में ध्यात हुआ पञ्चवक्त्र होताहै ऐसा स्वच्छन्दतन्त्र में भी लिखा है अवभो सृष्टि प्रक्रिया विरोध इन तीनों रीति के न जानने वाले कूप मण्डूक के विना कहना किसो की अकल के भीतर नहीं समाता इस मन्त्र का भी समीक्षार्थ ऐसा दयानन्द मत के खण्डन में लग सकता है वे नारकि हैं जो महर्षियों के कहे रामाद्यवतार मूर्ति पूजा आदि का असंभव की उपासना करने वाले कंसादि के तुल्य हैं उनसे ज्यादह अन्धतामिस्र नरक के लायक

भ्येमानवदीश्वर नरकस्वर्गादि नां ज्ञानस्यापिप्रामण्याभिमान स्य-प्रवृत्तिप्रयोजकस्य शास्त्रानुसारसंभवनया परमात्मस्वीकारस्यानु मानं प्रमाणंअभितिकारण तावच्छेदकधर्मवत्वादि त्यादिष्वपि संभव नावशादेव प्रमाणंप्राणभृदिति विष्णुसहस्रनामोक्तेः परमात्मशरीर स्यानुमानस्यप्रमाण त्वस्यतर्केनो पाधिशङ्कावारणात् संवाद संवादि प्रवृत्तिलिङ्कानुमानैश्चप्रामाण्यसिद्धेः शास्त्राधीनधर्म प्रवृत्तेश्चसर्वस्य अपिअवश्यस्वीकारस्यैवोचितत्वाच्चेति तदस्वीकर्तृणामवश्यं नारकि त्वमितिभावः ॥ ३ ॥

दयानन्दमते तेऽजीवाज्ञा अन्धकल्पोलूकादियो निष्ववाजन्मा-न्तरयोग्याः येऽसंभूतिसृष्टि प्रक्रिया मसंभूतस्वरूपां चतुर्वदनादि मूर्त्ति मुपासते ततोभूयश्चते येरामादिसंभवं मूर्तिंचोपासते इत्यादि कार्थ संभवइतिध्येयम् ॥ ४ ॥

वो हैं जो अपने मूर्त्ति पूजा खण्डन मत के देवत भूत प्रेत आदि के खण्डन के विरुद्ध मुक्त जहा चाहे जासकता और मुंह, कान, नाक आदि बन कर आनन्द ले सकता यह पाषाण में आकर सनातन वालों को पूजा का हकदार अपने प्रेतों के बनाने के लिये मुक्त नाम बदल प्रेतादि के संभव की उपासना करते हैं ॥ ५ ॥

साङ्ख्य मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होसकता है कि वे अन्धतामिस्र महामोह तामस वृत्ति में प्रविष्ट हैं जो सभ भाव पदार्थों का भी असंभव अभाववादि मानते हैं इनसे ज्यादह वो है जो आत्मा को संसर्गि बनाने के लिये प्राकृतातिरिक्त बहुत सेवास्तव आत्मधर्म का संसर्ग संभवमान रहे हैं ॥ ६ ॥

अत्रसमीक्ष्यंरामादेस्तन्मत श्रेष्ठस्यराज्ञा मुक्तजीवस्य सर्वविधानन्दयोग्य पूजनाभावः स्वसिद्धन्तविरुद्धः पाषाणेनियतस्थि त्यभावेऽपिस्वतन्त्रस्यत त्राप्यागमन पूजनभक्ति प्रसन्नता संभवात् मुक्तानामेवतन्मते देवत्वस्वीकारसंभवात् परमात्मनश्चसर्व व्यापक स्यपाषाणपूजयापाषाणावच्छेदेन पूजन संभवाच्च शरीरारावच्छेदेन जीवस्येव चतुर्वदनादीनामपिवायुनागर्भविकृतौ चिकित्साशास्त्रप्रसि-द्धेरद्यापिहादाकुलिहस्तद्वयादिवत्पुरुषोपलब्ध्यात्तद्वदेव चतुर्वदनादिवि कृतशरीरस्यसंभवेसृष्टिप्रक्रियाबहिर्भूतवा दस्यासर्वज्ञोक्तस्य सकल-सृष्टयनभिज्ञकूप मण्डूकन्याय विषयस्यात्यन्तं स्वीकारानौचित्या युक्तत्वंस्वयमेवेध्ये रंसुधीभिस्तदेतन्मन्त्रेणाभिवदतिमूर्तिपूजादिमहर्ष्युक्ता संभवोपासकोऽन्धतामिस्रे नरके पतति ततोभूयः सहियः स्व विरुद्धं मुक्तस्य पाषाणं दावपिआगन्तुं शक्ति मतःसंभवन्मेनेइति ॥ ६॥

विज्ञान भिक्षु सांख्य का भी यहां यही अर्थ है ॥ ७ ॥

दयानन्द के मत विज्ञान भिक्षु के पिछलग जैसे में एक यह भी अर्थ हो सकता है कि वे तामस हैं जो अविद्या, जड को पाषाणादि मूर्त्ति मानते हैं उनसे ज्यादह वो जो उन्हें ईश्वर प्रत्यक्ष विरुद्ध साम-र्थ्यवान् देवता मानते हैं विद्वानों के विना देवता तो कोई भी नहीं ॥ ८ ॥

इस में समीक्षा है कि जो कुछ है सर्वेश्वर सर्वव्यापक परमात्मा का शरीर है तो उस में पूजा और ऐश्वर्यमानना तुम्हारे परस्पर विरुद्ध सिद्धान्त में भी तो प्रति कूल नहीं मानों तो अप-सिद्धान्त न मानो तो सर्वेश्वर के सर्वव्यापकता मानने में अपसिद्धान्त है इस से यह भी समीक्षार्थ है कि जो सर्वेश्वर सर्वव्यापक चेतन का

सांख्यमतेऽन्धंतमोमहामोहन्तामसंप्रविशन्तियेअसंभवंलयंमावानाम
ब्रह्मादिनउपासतेततोऽधिकंतेये संभूत्यांसम्भवेवाप्रकृत्यतिरिक्तस्यवहु
विधस्या त्मसंसर्गिलश्च उपासास्वी कुर्वन्ति इतिभावः ॥ ७ ॥

विज्ञानभिक्षुमतेपि एषएवार्थः ॥ ८ ॥

दयानन्द मते तेऽन्धं प्रविशन्ति तमोऽज्ञानंतामसाये असंभूति
अविद्यामुपासतेऽज्ञानस्य तामस विकारस्य पाषाणादेरूपासां स्वीकु-
र्वन्ति ततोऽप्यधिकंये,संभूतिं तेषामैश्वर्यं देवत्वं स्वीकुर्वन्ति नहि विद्वद
तिरिक्ता देवा इति एषोऽपि भावः ॥ ९ ॥

अत्रसमीक्षापरमात्म शरीरस्यपाषाणावच्छेदेन चेतनस्येश्वरस्य
आभावमसंभवं वा फलस्य वा तत्रेश्वरस्य वा उपासतेऽन्धंतमो व्रज-
न्तिते इतोऽप्यधिकं ये ये देवान् स्वयं कर्मदेव समान लक्षणान् मुक्तत्वेन

जडमूर्त्ति में असंभव और उसकी पूजा का और देवता का अभाव व
उस की प्रसन्नता का असंभव मानते हैं वो जरूर नारकी हैं और
मुक्त संभव प्रेत खण्डन विरुद्ध मानते और संभूति याने प्रजा के
पैदाश्व बढ़ने के लिये रत याने नियोग हो व्यभिचार एक शास्त्र
विरुद्ध धर्म निकाले वैठे हैं पूजा कल्प छोड़ कर वे उन से भी नारकी
हैं विद्वानों ही देवाका अर्थ पहले कह भी दिया है क्योंकि देवता मूर्ख
नहीं होते वो विद्वान होते ही हैं ॥ ९ ॥

योग मत के मुताविक इस मन्त्र का ऐसा अर्थ हो सकता है
वो अज्ञानी अन्धतामस वृत्तिके हैं जो योग निष्फल मानते हुए सिद्धि
नहीं ऐसा कहते विभूति पाद का असंभव मानते हैं उससे भी ज्यादह
अज्ञानी वहहैं वैराग्य विवेकख्याति को विगाड़ कर केवल विभूति पाद
से प्रलुब्ध हो कर विघ्नरूप सिद्धिजित हो जाते है ॥ १० ॥

स्वीकृतान् परित्यज्य संभूत्यां प्रजायां तेषां मनुष्येषुरता नितरां नियोगादि रता इत्यपि वेदेन भाविवक्ता निन्दारूपैव पूर्व मतस्य क्रियते परस्पर विरुद्ध स्व सिद्धान्ताविर्भावेन तेषामिति दिक् ॥ १० ॥

योगमतेऽन्धंतमः प्रविशन्ति ये ऽसंभूति मनैश्वर्य सिद्धम संभवं वा उपासते ततोऽधिकंते व्रजन्त्य ज्ञानं ये सिद्धिमात्ररताः परमात्मनः संपर्यां स्वस्य वा वैराग्य पद्धतिमत्यन्तरास्त्यजन्ति इति भावः ॥ ११ ॥

मीमांसक मते ऽन्धंतमो नरकं प्रविशन्तिते येऽसंभवं स्वर्गादि फलस्य शास्त्रकृता स मुक्तस्य यागादेरात्माऽनित्यत्ववादिन आहुरतोप्यधिकंते ये संभूत्यां संभवमात्रवादिनोऽसङ्गात्म मिथ्यादृष्टयोवाचैव तदाहुस्संन्यासिनो नतु तदर्थ कर्मानु तिष्ठन्ति इति भावः ॥ १२ ॥

मीमांसक मत में इस मन्त्र का ऐसा अर्थ होगा कि वे अन्धतामिस्र नरक के लायक हैं जो स्वर्गादि वेद के कहे हुए यज्ञ फलका असंभव आत्मा को अनित्य मान कर चार्वाकादि की तरह कहते हैं और उन से भी ज्यादह नारकी वे हैं जो शब्द प्रमाण छोड़कर प्रत्यक्षाति रिक्त प्रमाण नहीं संभावनामात्र की ही प्रवृत्ति अन्यत्र है ऐसा मानते हैं अथवा मायानाशवादि सब मिथ्या है ऐसा कह कर वेदान्तिमन्यसत्कर्म छोड़ कुकर्म मात्र परायणशिश्नोदर परायण हैं ॥११॥

इस मन्त्र में शाङ्कराचार्य जी का हमारी संस्कृत टीकानुसार यह भाव है कि अब तीन मन्त्रों से व्याकृत हिरण्यगर्भ (कार्य) अव्याकृत माया (कारण) उपासना के समुच्चय के लिये पहले इकले २ की निन्दा कर दोनों से तीसरे से समुच्चय करने को कहते हैं अन्ध-

शा० अधुना व्याकृता व्याकृतोपासनयोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निन्दोच्यते अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिं संभवनं संभूतिः सा यस्य कार्यस्य सासंभूति स्तस्या अन्याऽसंभूतिः प्रकृतिः कारणमविद्याऽव्याकृता स्यातामसं भूतिमव्याकृताख्यां प्रकृतिं कारण मविद्यां कामकर्म वीजभतामदर्शनात्मिकां मुपासते ये ते तद्नु रूपमेवान्धंतमोऽदर्शनात्मकं प्रविशन्ति ततस्तस्मादपि भूयो बहुतरमिवतमः प्रविशन्ति य उ संभूत्यां कार्य ब्रह्मणि हिरण्यगर्भाख्येरताः ॥ १४ ॥

टी०—एकजीवस्य हिरण्यगर्भस्य तदुपादान प्रकृतिमात्र जडभागस्य वा ब्रह्मदृष्टारस्तौष्टिका अज्ञानिकोटिनि विष्टा इति भावः ॥ १५

वेदान्त विज्ञानभिच्च मते ऽसंभूतिमविद्यां मिथ्यादृष्टि रूपमाया नाशवादंये उपासते तेऽन्धतमोज्ञानं प्रविशन्ति, ततोधिकंते ये संभूतिं

तामस वे लोग हैं जो तुष्टिवादि इकली प्रकृति (कारण) अविद्या वा (तदवच्छिन्नचित) संभूति (कार्य) से भिन्न उपासना करते हैं वहीं संतुष्ट होने वाले उनसे ज्यादह वे अज्ञानी हैं जो कार्य ब्रह्महिरण्यगर्भ (एक जीव) में ही केवल रत हैं केवल प्रकृति व केवल एक जीव को ब्रह्मदृष्टि से तौष्टिक होना उचित नहीं ॥ १२ ॥

वेदान्तिविज्ञान भिक्षु के मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होगा कि वे अन्धतामस हैं जो संसार का असंभव मायानाशवाद सभ मिथ्या है ऐसा मानते हैं (विज्ञान भिक्षु यद्यपिसांख्य सूत्र भाष्य में शांकर वेदान्ति को माया वादि कहता है परन्तु वे तो माया का वाध मानते हैं इस से झूठ बोलना पड़ेगा इससे प्रति योगिता के अर्थ का षष्ठी का समास अभिप्राय निकाल कर हम उस के अर्थ का माया

प्रकृति सृष्टि हेतुत्वात्तत्र प्रतिबिम्बितं वा प्रजायमानत्वेन संभूतिस्त्वात-दति रिक्तोहि परमात्मा जीवप्रकृतिभिन्न इति भावः ॥१५॥

माध्वमते अन्धंतमो नरकंते प्रविशन्ति येऽसंभूतिमसंभवं स्वामि हरिभक्ति भेदेन परमात्म सत्तादेस्तदुपासा फलस्य वा स्वीकार लक्षण मुपासां मतिं विदधति ततोभूयस्ते ये उसंभूतौ शिवप्रजायां शैवेश्वरत्वे वाभो: शिवस्य समिति चन्द्रबीजेन नाम्ना तस्य भूते विभूते]रीश्वरत्व-स्यच परामर्शेन चन्द्रशेखर भस्मधारीश्वर वपुषितदीय संप्रदायादि भेदैश्चन्द्राकार त्रिपुण्ड्र भस्मादि धारणे वा रता अनुरक्ता इतिभावः१६

भट्टभास्कर मते तेन्धंतमः प्रविशन्ति ये असंभूतिं अप्रकृतिं ब्रह्म-भिन्नाभिन्न मुपासते जडकारण वादिनो हिनेच्छन्ति प्रकृतिमुपादानं

नाश वाद या मायाबाधवाद ऐसा शब्द देते हैं) उस से ज्यादह तामस वे हैं कि जो प्रकृति वा जीव रूप प्रतिबिम्ब को ही ब्रह्म माने बैठे हैं ॥ १४ ॥

माध्व मत में इस मन्त्र का ऐसा अर्थ होगा कि वे अन्ध तामस वृत्ति के नारकी हैं जो हरि भक्ति भेदवाद में असंभव दृष्टि रखते है अथवा परमात्मा कहने का अथवा परमात्म भक्ति के फल का असंभव मानते हैं और उन से भी ज्यादह वे नारको हैं जो उ संभूति शिव प्रजा में शिव के ऐश्वर्य में (उ) शिव (स) चन्दबीज से कही विभूति वाला याने चन्द्र शेखर में वा उसके ईश्वरत्व वा उस के संप्रदाय में लगे है अथवा शिव के चन्द्राकार भस्मत्रिपुण्ड धारण वगैरह में लगे है ॥ १५ ॥

भट्टभास्कर के मत में इस मन्त्र का ऐसा अर्थ होगा कि वे अन्धतामिस्र नरक लायक हैं जो भिन्ना भिन्न हरि को प्रकृति (उपा-

ब्रह्म ततो भूयइत ये उसंभूत्यां शिवादितः सृष्ट्यावुपादानत्वेन रता प्रकृतिमुपादानं साक्षादेवानन्त कल्याणगुणं स्वलीलया स्वा भिन्न भिन्नं जगत्सर्जयन्त मुपासीनाहि भागवताः प्राप्नुवन्त्यलभ्यां ज्ञानकर्म निष्ठां पारमेश्वर्यं संपद मिति भावः ॥ १७॥

निम्बादित्य मते अन्धंतमः प्रविशन्ति नरकमन्धतामिस्र संज्ञकं येऽसंभूतिमप्रकृति हरिं स्वतन्त्रंप्रकृतिं वा परमात्मनश्चा सम्भव मनन्तकल्याणगुणस्यवोपासतेऽस्वीकाराख्य मतिं विदधतेवा ततोऽधिकंते ये उसंभूत्यां शैवात्रिपुण्ड्रभस्म धारणादिकां विवर्त्त भिन्नाभिन्न हरिविमुख्यवर्त्तमानां दीक्षामधिश्रयन्ति इति भावः ॥ १८॥

रामानुजमते अन्धंतमोनरकाख्यं प्रविशन्तिये असम्भवं विशिष्टा

वानकारण) नहीं मानते और उसकी भक्ति नहीं करते उसके संप्रदाय नहीं मानते उस से भी ज्यादह वो हैं कि जो प्रकृति याने साक्षा दुपादनवादि बल्लभ व सांख्य जड प्रकृति कारणवादि या (उ) शिव के संप्रदाय में लगे हैं ॥ १६॥

निम्बादित्य मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होगा कि वे अन्धतामिस्र नरक के लायक हैं जो केवल हरि को ही चित जड रूप से परिणत(अनित्य) मानते हैं अथवा कोई जगत्कारणही नहीं मानते अथवा परमात्मा का वा विवर्त्त भिन्ना भिन्न हरिका हो असंभव मानते हैं और उनसे भो ज्यादह वो हैं जो (उ) शिव त्रिपुण्ड्रधारणादि विवर्त्त भिन्ना भिन्न हरि छोड़ और भक्ति में लगे हैं ॥ १७॥

रामानुज के मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होगा कि वे अन्धतामिस्र नरक लायक हैं जो विशिष्टा द्वितीय नारायण का असंभव

द्वितीय नारायणस्या प्रकृतिं बातं स्वतन्त्रां वा प्रकृतिं कारणमुपादान-मुपासते ततोभूयस्तेये शैवादि संभवेरता इति भावः ॥ १९॥

वल्लभ मते अन्धंतमः प्रविशन्ति नरकमन्धतामिस्राख्यं ये सर्वा संभवं मिथ्यात्वं स्वतन्त्र प्रकृतिकारणवादं वा चिदुपादान परिणामत्वा भावंजगत उपासते न शुद्धा द्वितीयंनिर्गुण सगुणाख्यमुपासते ततोभूय-स्तये उसं भूत्यां शैवादिपथेरता विचलिता इति भावः ॥ २०॥

नकुलीशपाशुपत मते अन्धंतमो नरकपाशुपति यातनादेहान् प्रविशन्ति ये असंभूतिं अस्य विष्णोरैश्वर्यं तत्प्रपञ्चवादंवोपासते ततो ऽधिकंते संभूत्यां प्रकृतै जडे संभूतौकं चिन्मूत्रकविशेषं शिवं मन्यास्त-

---

अथवा उसको कारण नहीं मानते व परमात्मा ही नहीं मानते वा जगत्कारण का असंभव नहीं मानते वा जड प्रकृति को स्वतन्त्र कारण मानते वा परिमात्माको ही परिणामी मानते हैं उन से ज्यादह वे हैं जो शैवादि और २ ही भक्ति के संभव में दृढ है ॥ १८ ॥

वल्लभ के मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होगा वे अन्धतामिस्र नरक के लायक हं जो सभका असंभव मिथ्यात्वआदि मानने वाले अथवा प्रकृति को स्वतन्त्र कारण मानने वाले चार्वाक बुद्ध वे शाङ्कर वेदान्तिसांख्य आदि हैं शुद्धाद्वितीय हरि का ब्रह्म संवन्धादि लेकर परम प्रेयः पुष्टि २ भक्ति नहीं मानते उनसे भी ज्यादह वे अज्ञानी हैं जो शैवादि और २ मार्ग में ही इस भक्ति को छोड डूवते फिरते हैं ॥ १९ ॥

नकुलीश और शैव मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होगा कि अन्धतामिस्र पशुपति के दण्ड के (यातना देह) कैद के कमरें वनते

त्रोपादाने ब्रह्मणिवा विमुच्य सकलकारणं भवमपिभवेशं गूढागूढ लिङ्ग-तया सकल जगदन्तर्यामि तयास्थितंरता निरताः पूर्वोक्त कुपथ इति भावः ॥२१॥

माहेश्वर मते ऽन्धंतमःप्रविशन्ति यातनादेहान् ये अस्य विष्णोः संततां भूतिमुपासते ततो भयस्ते तमः प्रविशन्ति ये उ वितर्के संभूत्यां पितृनूयांमृतक विभूतौ भूतमार्गे प्रेत शिववादिनः स्वयमेवा दृष्टं विमुच्य सम्भवे लीलामात्रेरता लीलामात्र वादिनः परमात्म वैषम्यनिघृण्य दोषेण सृष्टिवादिन इति भावः ॥ २२ ॥

प्रत्यभिज्ञादार्शनिकमते ऽन्धंतमः प्रविशन्तिये ऽस्य संभूतिविष्णोः विभूतिमपासते ततोमधिकं यथास्यात्तथातेनरकयातनादेहं विश-

---

व उनमें प्रविष्ट होने वाले नारकी है जो (अ) विष्णु की पूंछ पकडकर वही ईश्वर है ऐसा मानते वा शिव से पैदा हो कर भी उस बात को निन्दा और पाखण्ड चलाते हैं उन से भी ज्यादह वो हैं जड प्रकृति वाद वा भूतादि शिव मानने वाले हैं ॥ २० ॥

माहेश्वर मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होगा कि वे अन्धता-मिस्र नरक के लायक हैं उन्हीं यातना देह में प्रवेश लायक होते हैं जो (अ) शिव (लिङ्ग) रूप से पैदा होकर उसी को अपवित्र भाव में रख कर उसकी निन्दा में लगे केवल विष्णु को पूंछ पकड़ उसके पाखण्ड भक्ति वाद के प्रपञ्चों में पडे हैं उन से भी ज्यादह अज्ञानी वो कि जो प्रेत शिववादि वा अदृष्ट विना संभव सभ का मानने वाले हैं जिस में परमात्मा शिव को भी वैषम्यनैर्घृण्य दोष लगाते हैं ॥ २१ ॥

न्तिये उ वितर्के संभूतिमात्रे स्पन्दमात्रे कार्यकल्परेताः परसंभव वादेन, प्रत्यभिज्ञारहितावासोहमिति नित्यसंविच्छक्ति शिवात्मक प्रत्यभिज्ञाया एवभोगे मोक्षेचहेतुत्वादिति भावः ॥ २३ ॥

शाक्त मते अन्धंतमः प्रविशन्तिये परित्यज्य जगन्मातरं सर्वोत्कृष्टामसमर्थं शक्तिरहितस्यास्य विष्णोस्संभूति मुपासतेऽसद्वादाम स्ततोधिकं ये चप्राप्यापि समीपवर्त्तिलोकं तत्रैव उ सूभूती शिवेपचरता नतु ततोप्यधिक कोटिमुपारूढा अतितमामन्धाः अप्रियं वैरिणं वा पुत्रमिव न शक्तिस्सुभगा भोगमस्मै नवा मोक्षमसमर्थाय क्लीवाय प्रयच्छति नवादास्यतीति भावः ॥ २४ ॥

प्रत्यभिज्ञादर्शनिक शाम्भव मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होगा कि वे अन्धतामिस्र नरक के लायक हैं जो (अ) विष्णु की पूंछ पकड शिव देवी परमात्मा पैदा करने वाले की और उनके पजकों की निन्दा कर पाखण्ड दिखा कर गृहस्थि बने भी निर्लज्ज बैठे हैं उनसे भी ज्यादह वे हैं जो स्पन्द मात्र कार्य में ही रत हैं अथवा परमात्मा मान कर सोहं प्रत्यभिज्ञा से हीन हैं ॥ २२ ॥

शाक्त मत में इस मन्त्र का यह अर्थ है कि वे अन्धतामिस्र नरक में जाते हैं जो जगन्माता का सर्वोत्कर्ष वा उसे ही नहीं मानते अथवा भविष्णु उस की संभूति संतान में ही मस्त होकर उसके संप्रदायादि के निन्दक हैं और चार्वाकादि असंभववादि हैं उन से भी ज्यादह वह नारकी हैं जो शिव तक पहुंच कर भी एक दर्जा के लिये असमर्थ बनते शक्ति निन्दा में तत्पर है शक्ति मात्र ही अप्रिय वैरि शक्ति हीन असमर्थ को सुभगा भोग नहीं देती तो जगन्माता तो कैसे दे दिला सकती है ॥ २३ ॥

साहित्यमते अन्धंतमोज्ञानं,मन्धतामिस्राख्यं महामोहं प्रविशन्ति तेये असंभूतिमसंभवं रसस्य परमात्मनो निर्वासना ऐहिक पारलौकिक रस संस्कार शून्या स्ततो भूयस्तेये संभूत्यां संभवेरसस्य उ रहस्यच शृङ्गारादि प्रधानतया हरिभक्ति शन्यारताः कुमार्गे ते एवहि श्रेयांसो येऽलौकिकरसाच मत्कार प्राणाहीनतर कल्मषा हरिभक्तिप्रवणाःप्राक्त नैहिकपण्यशीलशालिनःनभक्तिमार्गमन्तराश्रेयान् चमत्कारिरसानुभवो बहुविध दोषग्रासात् इतिभावः ॥ २५ ॥

अत्रेदं समीक्ष्यं न परस्य रसकलमतनिन्दया कस्याप्येषु पर्यवसानंस्यान्नहि परमात्मनिवाविकल्पः नापितदभाव इति एवं पुराणेषु सर्वथा वेदो भगवानेवमुपदिशति नारकास्ते ये

शाहित्य मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होसकता है कि अन्ध-तामसवृत्ति वाले वे अज्ञानी हैं जो रस परमात्मा का असंभव वा उस से चतुर्वर्ग संभव उसको वासना के असंभव वाले ऐहिक परलोकिक संस्कार हीन हैं उन से भी ज्यादह व आज्ञानी हैं जो उस रस के होते भी उस भक्ति मार्ग से शून्य कुमार्ग में हैं वही तो अच्छे माने जाते हैं जो अलौकिक रस चमत्कार के भावना वाले निष्पाप हरि भक्ति में प्रवीण पूर्व ऐहिक पुण्य वाले हैं ॥ २४ ॥

इस में यह समीक्षा करनी चाहिये कि सब मतों की परस्पर निन्दा से इन में एक कोई भी सिद्धान्त नहीं ठहरेगा इसी तरह पुराण का भी एक २ आज कल की परस्पर निन्दा भक्ति के वैष्णव शैव निन्दामें ही तात्पर्य न रखकर दोनों इकठे कर वैष्णव शैवादि सब पक्षी लेने वालों को प्रशंसा में तात्पर्य है यह रहस्य लहरी में भी

शास्त्रीयोक्तिषु असंभवमुपासतेनहि शास्त्रमसदुपदिशति ततो भूयस्ते येसन्तमितिमत्वा ज्ञानभूमिका विरहितास्ते परमार्थ संतमेवमन्यन्ते रताश्चवृथा रमण परायणा इति सर्वविध देवतासु निन्दा कल्पं द्वेषकल्पं परित्यज्य परमात्मानमेकरसमेकमेवयोग व्युत्थान भूमिका क्रमेण मातृ शिव विष्णु ब्रह्म रुद्र गणाप भैरव सूर्यात्मनो सृष्टिप्राक्काले हिरण्यगर्भ दृष्ट्वा विभूति शरीरं नानाविधध्यानैरूपासासौ कर्पापध्येयं स्वविशेषणस्य स्वाभाविकस्यैव धर्मज्ञान वैराग्यैश्वर्यात्मिक सत्वांशस्य कर्मणोपचितस्य तदर्थांशेन शुद्धा द्वितीयस्यैव बाधसामानाधिकरण्येन शक्ति मतांशिवाद्यं नाम भेदोपासनया सहैव निर्विशेष पर्यवसापि सोहमिति

हमने लिखा है परमात्मा में भी विकल्प भेद आदि की कल्पना नहीं हो सकती इससे सर्वथा यही वेद भगवान् उपदेश करता है कि वे नारक हैं जो शास्त्र को उक्ति में असंभव मानते हैं शास्त्र बुरा उपदेशक भी नहीं करता उनसे भी ज्यादह तामस वे हैं जान कर भी शास्त्रतत्व को लोकव्यवहार परमार्थ सत् मानते हैं और वृथा रमणा परायण हैं याने सब देवता में निन्दा द्वेष छोड़ कर एक रस परमात्मा को जिस तरह से योग से उठने हैं इसी तरह सृष्टि के आदि देवो, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, गणपति, भैरव, सूर्य रूप से आदि जीव की दृष्टि में अवतार शरीर धारण किया उन्हीं नाना ध्यान नाम से उपासा निर्विशेष शुद्धा द्वितीय रूप की मिथ्या करता हुआ बाध समानाधिकरण उपासना सहित सोहं प्रत्यभिज्ञा में स्थित रहे यही सब आचार्यों का आशय महर्षिगणैक्यवाद करने में प्रतीत है इसी का उपदेश जैसे होवे तो व्याख्या की हुई ही ठीक सिद्धान्त होती है ॥ २५ ॥

भावरतःस्यादित्येव वेदोपदेश इति सकलाचार्यवर्याणां निखिला ऽऽशयः उपदेश इति ध्येयमितिदिक् ॥ २५ ॥

अन्यदेवेति वैशेषिक मते संभवस्या संभवस्यानितरूस्यान्य देव फलं स्वरूपं चाहुरिति शुश्रुमधीराणांवचोये धीरा नोस्तध्यंतत्त्मतं विचिच्यवचक्षिरे इति शिष्य प्रश्नार्थानुवादेवदति उपदेश जिज्ञासा शिक्षणार्थं वेदो भगवान् इतिध्येयम् ॥ १ ॥

गौतम मतेप्येवम् ॥ २ ॥

तार्किक मते प्येवम् ॥ ३ ॥

सांख्य मते प्येवम् ॥ ४ ॥

अन्यदेवेति

वैशेषिक मत में इस मन्त्र का यह अर्थ हुआ कि पहले इस मत के अनुसार असंभव शून्य वादादि और संभव वादि का स्वरूप और फल जुदा २ कहा जिन धीरों से हम ने सुना यह शिष्यों के उपदेश का अनुवाद अनुवाद वेद भगवान् ने त्रिकाल दर्शी होने से किया १

गौतम रीतिसे संभव असंभवकाफल औरस्वरूप जैसे भिन्नर कहा वैसे सुना यही अर्थ है २

तार्किक मत में भी असंभव संभव का भिन्न २ स्वरूप और फल कहने वालों से सुना यही अर्थ है ३

सांख्य मत में भी असंभव संभव भिन्नर स्वरूप और फल कहते हुओं से सुना यही अर्थ है ४

विज्ञान भिक्षु सांख्य का भी यही अर्थ है कि जैसे उन के मतके मुताबिक संभव असंभव का भिन्नर फल और स्वरूप धीरों ने कहा वैसे सुना ५

विज्ञानभिक्षु मते प्येवम् ॥ ५ ॥

दयानन्द मते प्येवम् ॥ ६ ॥

मीमांसक मते प्येवम् ॥ ७ ॥

केवलंमत भेदे परामर्श कतव्यछदस्यार्थ भेदस्तत्रमन्यत कृपोबोध स्तत्र दयानन्द समीक्षा पूर्वार्थरीत्या पृमला संगत्याऽनुतावित्वा ८

शा० अनुलोभवोत्पासनयो समुच्चय कारणावयवफल भेद माह अन्यदेवेति अन्यदेव पृथगेवाहुः फलं संभवात् संभूतः कार्य ब्रह्मोपासनादणिमाद्यैश्वर्यल

इसी तरह दयानन्द के मत के मुताबिक संभव असंभव जैसे हुए वैसे कहने वालों से सुना है ६

और समीक्षकों से उस दयानन्द के मत के असंभव और अन्य मत के संभव का स्वरूप और फल जुदा २ कहते हुओं से सुना यही मन्त्रार्थ है ७

मीमांसक मतमें भी यह अर्थहै कि उनके मतके मुताबिक संभव असंभवका फल और स्वरूप कहने वालों से जुदा२ सुना ८

शङ्कराचार्य का हमारी संस्कृत टीकानुसार अवतारण सहित यह अर्थ है कि मायावच्छिन्न परमात्मा रूप ही जीव को विशेष्यां शैक्यदत्तरबाध से समझकर दोनों मिश्रित उपासनाका फल कहने को पृथक निन्दा इकठी मन्त्र से करते हैं कार्य, ब्रह्म और अव्या कृतोपासनाका फलपीछे कहनेवाले धीर जोसमुच्चय से उपासना का अणिमादि सिद्धि फल पाचुके उन से सुना ९ १०

यहां वेदान्त विज्ञान भिक्षु साख्य मत समझना चाहिये इस मत में इस मन्त्र का यह अर्थ है कि (अ) विष्णु के सद्भाव भक्ति आदि से स्वरूप सहित फल कहा और शिव भक्ति आदि

क्षणं व्याहृतवन्तइत्यर्थः । तथा मान्यदेवाहुर संभवाद संभूतेर व्या कृताद्व्या कृतो पासनाद्य दुक्तमन्धतमः प्रविशन्तीति प्रकृति लय इति धीराणि के दृश्यते इत्येवं शुश्रुमधीराणां वचनं येनस्त द्विचकिरेव्याकृताव्या कृतोपासन फलं व्याहृयातवन्तइत्यर्थं १३।९

टी० प्रकृति हिरण्य गर्भ योव्यंस्तोपासना निन्दा पूर्वोक्ता श्रुता धीरे इयोवेतत्तत्व विद्स्ते भवनेन समुच्चयेनतदुपासायुक्ता ततश्च पकृति लीनेमाणि माद्यैश्वर्यं भोग: फलं भवतीति भाव: १०

माधव मतेअस्प विष्णो: संभव द्भावना दन्यदेवाहु :फलम् संभवान्यदा अस्मिन्काले संभधा स्स्माहु: फलं नरकादि लक्षणं जन्मान्तर प्राप्य त्वात् ममोपासकत्वाद्भव एवमुक्त इति भाव

—— :०: ——

सांसारिक व्यवहार आदि से और ही फल नरकादि (अन्यदा) जन्मान्तर प्राप्तिका हेतु कहा जोधीर हरी भक्तिको बताहर कर अनन्य भक्ति रूप से हमें कहतेहुए उनसे यह हमने सुना ११

भट्ट भास्कर मत में भिन्न हरिको उपादान कारण होने से असंभव याने शून्यवाद जडवादादिका नरकादि अन्यफल कहा अथवा अन्यदा मरणके बाद फलकहा और शिव वा औरदेवता को उपासना का और ही अथवा जन्मान्तर में प्राप्तिके साधन अनुचित ही फल कहा जिन धीर पुरुषों ने हमने भगवद्भक्तों से सुना ॥ १२ ॥

निम्बादित्य मत में भी यह अर्थहै कि (अ) हरिके सद्भाव भक्ति आदि का स्वरूप व फल औरही उत्तम कहा और निन्दक अन्य देव शिवादि भक्त और नास्तिकादि का अन्य ही कहा जिन विवर्त भेद और अद्वैत दृष्टि वाले हरि भक्तों से हम ने भी सुना १३

तद्वैत धीराणां च शुश्रुमश्रुतवन्तो येधीरानोऽस्मभ्यं त द्विचचक्षिरे क्षि वस्तद्धरेः पृथग्द्वयं भक्तस्यतत्फलं व्याख्यातवन्तः इत्याकूतम् ११

भट्ट भास्कर मते हरे भिन्नाभिन्न रूपो पादानत्वा त्स्वा कारात् संभवाज्जगत्य नारकत्वा त्स्वरूप लक्षणं फलं माहुरन्यत् असंभवादन्यदन्यद्वा फलमाहुरन्यदु ये धीरास्तद्विचचक्षिरे [illegible] विदोनो व्याख्यातवन्तस्तेभ्य इति शुश्रुम इति भावः १२

निम्बार्कस्य मते अप्यहरे संभवाद्भावादन्यत्फलमाहुर्ध्व दृष्टा अन्य द्वयमाहुः फलं विवर्त्तं भिन्नाभिन्न तत्त्व वि-ज्ञापका अस्मभ्यं येधीरास्तेभ्य इत्येवंशुश्रुम इति भावः १३

रामानुज मत में भी अर्थ ऐसा हीहै कि विशिष्टाद्वैत (अ) हरिको कारणत्व मानना और उस की भक्ति काफल औरस्वरूप और ही कहा और सांसारिक वृत्ति व नास्तिकता व उस की निन्दा व अन्य शिवादि देवता भक्ति का और ही फल जिन ने कहा हमने भी उन समाश्रितों से सुना १४

वल्लभ मत में इसका यही अर्थ होगा कि शिवादि की उपासना का और ही फल कहा (अ) हरिकी शुद्धा द्वितीय चित् रूप हरि की पुष्टि र भक्ति का और ही परमैश्वर्य फल कहा (अ) हरि की ही लीला संभव से अन्यत् चित् रूप जीव परिणाम और उसी का उससे अन्यत् परिणाम न जिनने कहा अथवा (अ) हरि की कृपा न होने से ही और देव भक्तिकी दृढता ब्रह्म संबन्धा दि पुष्टि भक्ति से शुद्धा द्वितीय भाव होना भी उसी के सभव (भाव) से जिन ने हमें संप्रदाय का विवेक कर कहा उनधीरों

रामानुज मते अन्य देवाहुः फलं स्वरूपंच विशिष्टाद्वैतम्या स्य विष्णोः संभवाद्भावात्कारणत्व स्वीकारेणतदुपासन चसमा हुरन्यदन्य देवता फल स्वरूपं भवादित्येवंशुश्रुम धीराणांयेनस्त द्वि चचक्षिरेविविच्यतमा श्रयादि सम्प्रदायविवेके माख्यातवन्तो धीरास्तेषां वच इति भावः १४

वल्लभ मते भावाद्भवोपासनात्तोन्यत् अन्यदेवताफलंसम हु रेवमस्पहरे संभवादुपादान शुद्धा द्वितीय चितोहरेःपुष्टिपुष्टि भक्त्याख्य भावादन्यदेव पारमैश्वर्य संपत्लाभादिकं फलमाहुः यद्वाचितो प्यस्य संभवल्लीला रूप प्रयत्नादन्यज्जात्मकं चतस्या स्पहरेस्सम्भवा देवतन्मयतालक्षण भावात्परिणामा दन्यचिदा

से हम ने सुना अथवा (अमः) शकटासुर संबन्धितत् आख्यान को बाल अवस्था के भी जिस के प्रभाव को जिन भगवद्भक्ति दशम स्कन्ध के विवरण सुबोधनी रास पञ्चाध्यायी टीका कारों ने कहा हम ने भी सुना १५

नकुलीश पाशुपत १ शैव मत में अर्थ है कि (भव) शिव की उपासना का स्वरूप फल भिन्न २ (भेद में पहले) (भवाद में दूसरे मत में) कहा जिसमें भवरूप विश्वरूप त्रिगुण से भी ऊपर का दर्जा बताया अथवा (संभवद्व बीज से) चन्द्राकार त्रिपुंड्र्दि धारण वाली शिव भक्ति का स्वरूप फल अन्य ही स्वामिक स्वरूप फल कहा निकृष्ट सत्व प्रधान सदा शिव के नीचें दर्जे के (अ विष्णु की उपासना का और ही दास भाव रूप फल कहा स्वामि भक्ति का दास भक्तों से विरक्त ऐसे फल कहन वाले धीरों के कहने मुताबिक वह सब हमने पीछले मन्त्रों से सुना १६

अन्य माहेश्वर के मत में भी इस का यह अर्थ होगा कि

स्नकके चाहुस्सये कनपि विज्जडो भयकारण माहुर्वीक्षा यद्वा तल्लीलयैवयेप्य स्पदेवता भक्ता इत्यादि लक्ष्यलाभफलांभक्षित सामेव विद् धाम्यहमिरपत्तसोतोक्तंजहादि हेतुः भक्तिरम्येवांत स्येव ब्रह्म संबन्ध कृष्ण शरणता लक्षण पुष्टि २ भक्त्यासम्मय-लक्षणा शुद्धा द्वितीय भक्ति रित्याहुः फलं स्वरूपं चान्य जीव तान स्यदाव हस्ये वंशुम्भुम श्रुतयन्तों धीराणां वचनंते श्यो वाठ्य त्यया द्विभक्तेः येनोऽलम पर्यंततत्वं संप्रदायभेदेन विविच्यवचासि रे आख्यात वतो यद्वाऽनःशकटासुरस्ततसम्बन्धि तदा स्थान माचचक्षिरे भक्तिकथोपदेशतम्मद्धि मानंश्चालक्षावेधिहतिभावः१५

नकुलीश पाशुपत मते भवाद्भवस्यापि भवेश स्पोपास-

भदृष्टानुसार शिव का फल दातृत्व संभव है इस से शिव भक्ति ध्यान का स्वरूप और फल अनन्यही कहा (अ) विष्णुकी भक्ति और शिव निन्दा अन्यदेव भक्त अभक्त आदि को स्वामिरहित पशु आदि की तरह दण्डादि अन्य ही फल कहा भिन्न वैषम्यादि दोषों को हटाकर शिव भक्ति बताने वाले धीरों ने इन से इन न सुना १७

प्रत्यभिज्ञा आदि शाक्तमत मत में भी इस मन्त्र का यह अर्थ होगा कि शिव शक्ति रूपनित्य संश्लिष्टही कारणमाद्यात्म्य से स्पन्दात्म लिङ्गाकार भगाकार सब कार्य की भावना की प्रत्यभिज्ञा और महा विद्या पञ्चदेवतादि की तन्त्रादि सकल शास्त्र संभव भक्ति का स्वरूप व फल और ही कहा शिवशक्ति हीन स्त्रीव हरि आदि (अ) निन्दा भक्ति का स्वरूप फल और ही कहा अथवा संभव याने शक्ति की उपासना का स्वरूप फल और ही कहा और (अ) विष्णु का संभव जिस से उस शिव की

मा दन्यदाहुः फलं भवात्मक शिव पुरप्राप्तिर्णो रूपरिभाव लक्षणं मथाह शमिति चन्द्रश्री आत्मसंयुक्त त्रिपुण्ड्रादि धारण लक्षणाद् भावाच्चन्द्रशेखर भजनादि भावा द्वान्यदाहुः फलम् निरतिशय स्वामि कृपा लक्षणम् अस्य संभवाद्विष्णु भावाच्च निकृष्ट स्वस्य पृथादन्यदा हुः फलं स्वामि नीचलोक निवासारूपम् इतिशुश्रुम धीराणामवस्ते ध्यो शास्मोऽस्मच्यतात् पदार्थार्थं स्वात्मभवस्य विविच्यत्व क्षिरे आख्यातवन्त इति भाव १६

एवं माहेश्वर मतेऽपि संभवात्संभाव्यमानादृष्टानुसारिफल देव भावा नुपासना मुक्तमन्यत्फलम हुर स्यश्रिणो स्संभवाच्च भावाभि: स्वात्मिक परस्वात्मिक पशु वदन्य देव दण्डादि लक्षण

भक्ति का फल और ही सब से नीच दर्जे का कह, जिन शिव शक्ति का विवेक और पुंस्त्री में मा-उ-अहम्) क अर्थ भेद से एकाकार सोहं प्रत्यभिज्ञा करानेवाले धीरोंने उन शिव शक्त्या त्मैक नित्य संवित् भक्त सिद्ध भैरव प्रायो से हमने भी सुना १८

शाक्त मत में इस का यह अर्थ है कि शिवोपासक भक्ति ज्ञान का स्वरूप फल कहा और कहा (अ विष्णु की भक्ति का स्वरूप फल और निन्दक नास्तिकादि का दण्ड आदि फल अन्य ही कहा जिन (धीर ईर) बुद्धि को विद्या की प्रेरित की जिन ने उन शाक्तों से हमने सुना अथवा (अन) जगदम्बा का तत् वो समाधि व्युत्था नक्रम से आवि र्भाव सृष्टि के लिया जिन ने कहा याने जैसे सामर्थ्य से सत्व विवेक वृत्ति पूर्वक सत्व प्रधान हो कर संबन्ध जानर को गुण प्रधान प्रवृत्ति तमोगुण प्रवृत्ति से आगे ज्यादह न बढ ऐसा ख्याल कर अपने काम लायक व्यु-त्था न होता है परमात्मा की सृष्टि के लिये उसी तरह के व्यु-

फलमाहु इतेषांधीराणा मितिवच: शुश्रुमधिनो स्मर्यंतद्विवचक्षिरै विविच्दवस्तु तत्व माख्खयातवन्त इति भाव: १९

पृत्यभिज्ञा: दार्शनिकमतेसंभवात्स्वन्दातुकार्यात्मनो नित्यसंविदी भावात्सांसारिकादन्यदेव भाव लक्षणा द्वान्यदेव संसरणादि फलमाहु स्वपकलीवस्य हरे रगूढ लिङ्ग शिव शक्त्यात्मक जगद्विलक्षणत्वेन तदुपासकै: स्वीकृतस्य सकल पारमैश्वर्यानन्द भोगा योग्यत्वेन स्वयमापादितस्य संभवादन्यदेव सर्व विध पारमैश्वर्य संबद्धानिरूप फलमाहु: यद्वा संभावाच्छक्तै: सकल कारण रूपादन्यदेवाहु: सामर्थ्य लक्षणं फलमस्य विष्णो निंकृष्ट सत्वस्य सम्भवोयस्मात् स्वशिवस्यात्पदाहु: स्वरूपं फलंच भक्ति भावस्य इतिशुश्रुमधीरराणांयेनोरत्नभ्यंतत्वं यद्वा अनसामात्राक्षह

थान के जगत् नाटक का पृथग्यावतार सामर्थ्य की जगह जगद्रूपता और सत्व विवेक वृत्ति की जगह सदा शिव कर्तव्य ज्ञान सत्व वृत्ति की जगह विष्णु रजोगुण वृत्ति पृवृत्ति की जगह ब्रह्मा कायदा से । बढे हल के लिये तमो वृत्ति की जगह रुद्र अवतार हुए ऐसी पृक्रिया जिन ने कही सब पुराण की सृष्टि पृक्रिया की एक वाक्यता करनवाले योग क्रम दर्शि धीरों न उन से हमने भी सुना।१९।साहित्य मतमें इसका यहअर्थहै कि केवललम्पटता से भक्ति हीन रस चर्वणा का नरकपात फल (परिणाम दु:ख) और ही कहा (अ) हरिकी रसास्वाद हीन निर्वासन तोटाघ से सो भक्ति का और ही फल कहा जिन धीरो से हृदय भगवद् भक्ति दर्शि याने उन से हम ने भी सुना २०

इस में समीक्षक का विचार है एक परमात्मा में ओचाय का परस्पर विरोध इटाना बडी भूल की बात है और पुराणो

तत् शिवरूपं शक्ति शिवा शिवोहं सोह मिति पूत्य शिवां वि षयक्षिरे अभिशापितवन्त इति परमा कृतम् १९

शाक्त मते भवात्दूभावात्संसार लक्षणादन्यतस्तमाहुरन्य दाहु रस्य विष्णोः संभवाद्भावादु भयत्र निकृष्ट निकृष्ट तरलो काप्तेः निन्दःकादीनाम्पुरोऽइति शुश्रुमधीराणांवयोयोपुरुषःईश्रीः सुभगातस्यै तदुपभोगादि लक्षणपारमैश्वर्य भोगायवा नोस्मभ्यंतत् यद्वानसोमातुर्जगत्कारण भूतशक्तेःपृथमभा विर्भूत स्त्रीरूपाया स्तत्सर्वोत्कर्ष लक्षणं सत्वं विविच्य योग समाधि व्युत्थानक्रमीय शक्त्या विभाव विवेक रूयात्यात्मक सत्वा विभावविज्ञानात्मक व्युत्थान बीज सत्वाविभावक्रमेण शक्ति शिव विष्ण्वाविभाव विविच्याचचक्षिरे व्याख्यात वन्त इति भावः १९

साहित्य मते संभवात्केवल लम्पटाख्य भक्ति भावविपरी वाद्भावाच्चर्वणा दन्यदा हुरधःपात लक्षणं फलम न्यदाहुरस्य संभवात्निर्वासन कमंठ मात्र लक्षण पात्रघर्षण (लोटाघसीभक्ते ः फलंकाष्ठ कुड्य समान्धतत्वरूप मन्यदेवाहुरिति शुश्रुमधीराणांव चोयेनोस्मभ्यंतत् रसतत्वं सुनिपुणतर भक्ति रसा स्वाद योग्यस हृदय चमत्कारप्राणहरि गुणगायनम्व व्यदृश्यान्दोलनरसचर्वणाप

में भी इस तरह की भक्ति की जुदा २ निन्दा वैष्णव निन्दा शैव निन्दा लिखते हुए कर दी इस से जगदम्बादि सृष्टि योग व्युत्थान क्रम से मानकर निर्विशेष शुद्धा द्वितीय भक्तिहीउचित है परस्पर स्यमन्तोणि की तरह (अपने २ निन्दा द्वेषके अखाड़ों झगड़ों से देवतोपासक देवता व मनुष्यव शास्त्रोंमें फट डालकर नास्तिकों को स्थान देना भी उचित नही समझता और बजाय इस भक्ति के पुण्य फल के जिन की एक ध्यान से पूजा हो सकी

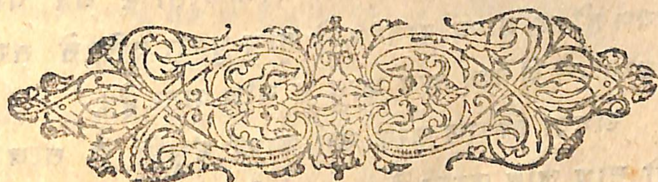
रस्यतत्वमनः शकटासुर संघर्षेन सहुपल क्षितरास पञ्चाध्यायी छटीत भागवतादि कृष्णचरिततत्वविविरुद्ध शास्त्रसारं चवचक्षिरे ठ्याख्याबन्त इति भावः २०

अभेद समीरयं नखलु परस्पर विरोध आचार्याणामेकस्मि न्परमात्म वस्तुनियुक्त इतिबहुश आवेदितं पुराखण्वपिनवायोग व्युत्थान रीत्युक्त नानादिसृष्टिमन्तरायोगेश्वरस्यसृष्ट्यादीव्युत्थान मुपपद्यतेनयान्यथा सकल पुराण विरोध परिहारः सम्भवति तस्मा दितिहास पुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेदितिस्मृतेअमृतमतोन्यदार्त मित्यादि श्रुत्यनुगृहीत शङ्करैकवाक्यतयाच शुद्धचित्तोभेदस्यैकमि त्यादि स्वगतभेद शून्यता बोधकश्रुत्याचाग्न संभवात्नानाप्रकारभेदेन विरुद्ध मत भेद संभावादन्यदेव फल मवश्यं परमात्म द्वेषान्नरक लक्षणं फलमासुर संभवाद्भक्ति वैमुख्येन सुन्दोप सुन्दन्यायेन परस्परस्यमनोणी नीत्याउपदेश विमुखैः परस्पर निन्दकैः समा- पादितेन नास्तिकता लक्षणेन सकल इव पराङ्मुखतया शास्त्रप यरालस्येन ततो प्याधिकस्वरूपमन्यदेवाहुः फल तेनैक वाक्यतया ऽसंग निर्विशेष पर्यवसायिवाधसमानाधिकरण विज्ञनाम भक्ति वादुयमान धर्म ज्ञान वैराग्यैश्वर्य रूपविशेषणा द्वितीयतया विशेष णस्य विज्ञान सत्वेन तन्मात्र शुद्धाद्वितीयो निर्विशेष पर्यव सायी

परमात्मा की दूसरे ध्यान से निन्दा को कंस भस्मासुर भक्तिमें दाखिल समझता हूं इस मत में इस मन्त्र का अर्थहैं कि संभव नाना रूप ध्यानावतार नाम भगवान् निर्विशेष शुद्धा द्वितीय की भक्ति का सोहं प्रत्यभिज्ञा पूर्वक अन्य ही सर्व मित्रत्व सर्वपूज्य त्व सर्वशास्त्र सिद्ध धार्मिक भैरव समत्वादि ऐहिक पारलौकिक फल कहेंऔर असंभव भक्ति निन्दा भक्ति अनाश्रितकर्म भक्ति

हरिरेवसेव्यः सोऽहमिति सर्वं विधदेवतात्मरूपा भेदैः पारमैश्वर्यं भोग संपन्नयेऽन्ते परम मुक्तयेचेति भावं शुश्रुमधीराणाम विरुद्ध धीमतां सकल निन्दा द्वेषराहित्येन तत्वे सर्वा रोहमापयद्धीम तां ये नोस्मभ्य मनसोमातुस्सत सृष्ट्या विभावकार्यं च विचक्षिरे व्याख्यातवन्त इति शिष्य ग्रहणा कारोपदेश माह वेदो भगवान् भावि दर्शी सर्व मतः सर्वा चार्य मत मूल भूत इति भावः २१

वाद का परस्पर द्वेष से नास्तिकत्वादि द्वारा असंभव का और ही फल कहा जिन धीर सर्व मित्रों ने उन सभ को अपनी सातवैदिकसेटी की जुदाई के हटाने वालों से हम ने सुना ऐसा समीक्षकोपादेश परामर्शानुवाद त्रिकाल दर्शी . वेद भगवान् सुद कर गये २१



संभूतिंच विनाशंचयस्त द्वेदोभयंसह ।
विनाशेन मृत्युंतीर्त्वा संभूत्याऽमृतमश्नुते ॥

संभूति मिति वैशेषिक मते संभूतिं परमात्मानं सर्व जगत उत्पत्ति हेतुं विनाशयतीति विनाशंज उत्पत्ति प्रलय हेतुमात्म मोक्षावबन्धनाश हेतुद्रव्यादिपदार्थतत्वावगमपूर्वकमात्मेतरभेदरूप विनाशं विनाश रूप मोक्ष साधकात्मेतर भेद ज्ञानंवायस्तद्द परामार्थ हेतु भूतं तत्व मुभयंसह कर्मणा वेद स्मृत्युदितेन परा-मात्मात्म तत्वं वेद वेत्ति संभूत्या परमात्म परायणत्वेन मृत्युं संसार कलनठांतीर्त्वाऽतीत्यमरणनन्तरंवा विनाशेन तत्व ज्ञाने नामृतं मोक्षमश्नुते ऽपुनरावृत्ति लक्षणंत मेव विदित्वेति श्रुत्या त्मेतर ज्ञानस्य मोक्ष हेतुत्वावधारणात् ततएवापुनरवृत्ति लक्षणा

वैशेषिक मत में इस मन्त्र का अर्थ यह है कि जगत् कारण परमात्मा व प्रलय हेतु (अथवा बन्धनाशहेतु)को सप्तद्रव्यादि पदार्थ ज्ञानपूर्वक जोजानताहै और आत्मा का इतर भेद मानता जानता है अथवा इतर भेद ज्ञान से आत्मा के दुःख ध्वंस होता है यह मानता शास्त्रीय सतकर्मा चरण करता है वह परमात्म परायण होकर शास्त्रीयाचरण से मृत्यु पुनरा वृत्ति से तर कर अथवा मरने के बाद तत्व ज्ञान से मोक्ष पाता है ।

अथवा विनाश करके कर्म काण्ड संभूति से तत्व ज्ञान दोनो साथ जान करता है वह कर्म के हेतु राग के दूर होने पर तत्व ज्ञान से मुक्त होता है । १ ।

गौतम मत में भी यही दोनो अर्थ होसकतेहैं परन्तु तत्व ज्ञान १२ आत्मादि प्रमेयों का और पहल अर्थमें परमात्मा योगि

त्यान्तिक दुःख ध्वंसश्रवणादर्थ क्रमेण पाठक्रम स्यानादरात् यद्वा संभूतिस्सम्यक् ज्ञानरूप स्वात्मेतरभावोद्भव्यादि ज्ञान पूर्वकः विना शस्वक्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्तीत्ये तदेक वाक्यतापन्नो विना यत्ने फल मोगेनेति व्युत्पत्ते विनाश फलकः परमात्मार्पण रूप कर्म कलापस्तदुभय वेदिन कर्मणा ऽधर्मस्य रागादिमृत्युहेतु बन्ध कस्य विनाशे संभूत्या तत्व ज्ञानेना पुनरावृत्ति माह मिथ्याज्ञान नाशादिति भावः १

गौतम मतेऽप्ययमेवार्थः परन्तु तत्व ज्ञान मात्मादि पदे पदक्षयं पृथमार्थे परमात्मनो जीव विशेषस्य विनाश रूप मुक्ति

पुरुष जीव विशेष विनाश करके मुक्ति उसका हेतु जानना चाहिये दूसरे अर्थ में संभूति तत्व ज्ञान प्रमाणादि १६ सोलह पदार्थ का उन प्रमाणादि से प्रमेय को जानना यह अभिमत है २

तार्किक मत में वैशेषिक के अर्थ का कुछ भी भेद नही मगर प्रमाण वैशेषिक ने प्रत्यक्ष अनुमान दो ही बौद्धवत् ज्ञान हेतु माने हैं गौतम की एक वाक्यता से इन्हो ने शब्द उपमान दो और माने हैं ३

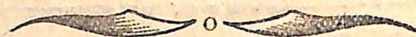
दयानन्द के मत में संभूति शब्द से कर्म काण्ड लें विनाश शब्द से दुःखध्वंसमोक्ष और उस का हेतु तत्व ज्ञान लें तो अर्थ हुआ कि दोनो उन को जानने से कर्म से मृत्यु से तर कर खोटी योनि न जाकर तत्व ज्ञान से मोक्ष होता है अथवा विनाश शब्द से सब कलय का अधिष्ठान प्रकृति लें संभूति शब्द से परमात्मा दोनोके जानने वाला प्रकृति तत्व विवेकसे प्रकृति लीन संसार तरकर परमात्म ज्ञान से मोक्ष पाता है ४

इस में भी यह समीक्षा है कि परमाणु नित्य उसका पैदा

हेतु भूतं विशेषं द्वितीयार्थे संभूति रूपसम्यग् ज्ञानं प्रमाणादि षोडश यथोक्त पदार्थ ज्ञानं प्रमाणादि निरामयादि प्रवेशज्ञानरूपं विशेषमितिदिक् २

तार्किक मते परमात्मज्ञानमात्म ज्ञानंचएवं वैशेषिकतुल्य मेवार्थद्वये प्रमाणानान्तु वैशेषिकाच्छद्गोपमान भेदेनाधिक्यमि तिदिक् ३

दयानन्द मतेऽपि संभूति शब्देन प्रकृते कर्म काण्ड स्याविद्याकार्य स्यग्रहेण विनाश शब्देन दुःखध्वंस रूप मुक्ति(विशेषण) हेतुभूत तत्व ज्ञानस्य ग्रहेणयस्त दुभयंवेदस कर्मणा मृत्युंतीर्त्वा संभूत्या



करने वाली प्रकृति यह परस्पर विरुद्ध मत है इस से सिद्ध नही होसकता तो प्रकृत का मन्त्रार्थ में प्रवेश उस के मत से नही हो सकता और मुक्ति उस की भी कर्म देवता स्वरूप केतुल्यव भूता वेशादि है यह पहले सिद्ध करचुके हैं उस के ग्राहक योग्य विचार कारी नही बनसकते संभूति आस्तिक मतकी सत्ता औरविनाश दयानन्दादिनास्तिक मत का दोनो जानता है वह दयानन्दादि नास्तिक खण्डन से नीच योनि आदि दण्ड रूप मृत्यु को तर करमपाकर आस्तिक मार्ग से ही मुक्ति को पाताहै यहमन्त्र का अर्थ वेद के अक्षरो का ही होसकता है ५

सांख्य मत में इस मन्त्र का अर्थ होगा कि संभूति कर्म फल भोग विनाश विवेक ख्याति दोनो को प्रकृति पुरुष भेद के साथ जानता है साथ कर्मो के मुक्त स्वरूप व उस के उपाय शास्त्रोक्त को जानता है कर्म से मृत्यु को तरकर तत्व ज्ञान से विवेक ख्याति से कैवल्य ज्ञान को पाकर मुक्त होजाता है राग न होने से फिर जन्म नही होसकता ६

विनाशेनामृतत्वमश्नुते दुःखध्वंसपूर्वक स्वतन्त्रानेक विध सामर्थ्यहेतु शक्ति विशिष्ट सुखोप भोगावस्थापूकृतिलय द्वितीया मुक्तिरिति तरिसद्धान्तात

यद्वा विनाशपदेन पूकृतिः सर्वलयाधिष्ठान त्वात संभूति पदेन परमात्मान दुःभय वेत्ता पूकृतितत्व विवेकेन तल्लीनसंसार बन्धेऽमृतं सुखा स्वादमश्नु तेपरमात्मा वेदनादिति सांख्य मतानुसरणस्य विसत्वात्संवाद यितुं शक्यतेऽर्थः ४

अत्रपूकृति स्वीकारात्रौ चित्यं तत्वे वा परमाणु नित्यत्व स्वीकारा नौचित्यं मुक्तौ सुख दुखराग पूकृति सत्ता भोग स्वात-

---

योग मत में इस मन्त्र का ऐसा अर्थ होता है कि संभूति विभूति पाद का सिद्धि काण्ड विनाश विवेक ख्यातिके बादको असंपूज्ञात समाधि दोनो इकठे जानता है वह सिद्धि पूभाव से यम आदि जीतकर यहां अनेक सहस्र वर्ष जीवित सुख लेकर मरणोतर भी असंपूज्ञात समाधि से अपुनरावृत्ति रूप कैवल्य प्राप्त करता है।

अथवा संभूति असंपूज्ञात समाधि और विनाश विवेक ख्याति दोनो साथ जानता है वो विवेक ख्याति से मृत्यु तद्धेतु रागादि के उच्छेद से बाद समाधि पूभाव से निदिध्यासन से कैवल्य पाक होने पर अपुनरा वृत्ति रूप मोक्ष को पाता है ७

मीमांसक मत में इस मंत्र का यह अर्थ होगा कि संभूति विधिशेष आत्मा के किये कर्म फल का संभव (होना) और यागादिक्षण विनाशि पुरुष द्वारा ही फल जनक है यह दोनो जान यज्ञादि करता है व चार्वाकादि की फला, समय शङ्का हटाकर स्वकर्मसे अस्द्योतिजीतकरउत्तम स्वर्गादि नित्य आत्मा

ऽयं शरीर ग्राहित्व बहु विध कार्यकर्त्तृ शक्तिमत्त्वादिकंच कर्मं देवता स्वरूपंच मुक्त लक्षणम्‌ दुःखबाहुल्येनभूतप्रेत स्वरूपत्वाप तिश्चः इति विद्यांचा विद्यामित्यत्र पुरोक्त रीत्योह्यम्‌ इति दिक्‌ नापितत्र दुःखध्वंसीराग द्वेषादि सत्वैरुपपादयितुं शक्यः प्रत्युत द्वेषणोदुःखसाङ्ख्य मते संभूतिं संसारहेतु भूतंतद्रूपंवाभोगंविना श विवेक ख्याति रूपात्म प्रकृति भेदंचरम वृत्ति वेद्यं कैवल्य ज्ञान हेतु भूतं मुक्ति स्वरूपं वा दुःखत्रय नाशाख्यं विनाश कर्म कला पंचाऽन्तःकरण शोधकभोग विवेकख्यातिरूप प्रयोजनं वा संभूति मेतदुभयं वेदयह कर्मणा समस्त मुच्चयेन सविनाशेन कर्मणामृत्युं

से पाता है ८

शङ्करा चार्य का हमारी टीकानुसार इस मंत्र में यह भावार्थ है कि हिरण्य गर्भोपासना औरअव्या कृतोपासना दोनों जानने वाला हिरण्यगर्भोपासना का फल अष्ट सिद्धिका लाभ कर मृत्यु को जीत लेता और अव्याकृतोपासना से प्रकृति लीन होता है ९

सांख्य विज्ञान भिक्षु के मत में इस मंत्र का यह अर्थहोगा कि संभूति विविक्त मुख्य आत्मा का होना विनाश प्रतिबिम्ब जीव का बद्ध होना दोनों जो जानताहै वह प्रति बिम्बसे रागा भाव के अभ्यास को संपादन कर (मृत्यु पुनरा वृति तरकर कैवल्य ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है १०

वेदान्ति विज्ञान भिक्षु के मत में इस मंत्र का यह अर्थ होगा कि प्रकृत्यादि व्यतिरिक्त आत्मा का संभव (संभूति)और (विनाश) कर्म काण्ड दोनों साथ ही साथ जो जानता है वह संसारागमन रूप मृत्यु से तर कर अन्तःकरण शुद्धि वैराग्य द्वारा

तीहवां विवेक ख्यात्या वैराग्य संपादनेन तथा मरणोत्तरंसंभूत्या भोगस्य चोरिताऽर्थात प्रयोजन मात्रस्य चोपरतत्वात्ाहंनमेऽत्या दि कैवल्य ज्ञानाद् मृतमश्नुते ऽपुनरावृत्त लक्षणमिति भावः॥

योग मते संभूतिं विभूति पाद रूप सिद्धि काण्डं विनाशं विवेकख्या त्युत्तर स्वमात्र निष्ठता रूपा संप्रज्ञात समाधिश्चयस्त दुभयं सहवेद वेत्तितच्छब्देन द्रष्टृस्वरूपावस्थान प्राधान्य माहा संप्रज्ञात समाधेःस संभूत्यासिद्धि प्रभावेन यमादीन् विजित्येह सुखी अमृतइव मृत्यूत्तरं विनाश रूपा संप्रज्ञात समाधिना अपु नरा वृत्ति रूप कैवल्यम श्नुते प्राप्नोतिइति पाठव्यत्ययेनव्या ख्येयंयद्वासंभूतिं सम्यगितराभाव रूपासंप्रज्ञातस्वरूपमात्र भवन मेव विनाशो विवेक ख्याति विरागता ऽभ्यासदृढ भूमिःयंस्ततस्व रूपमुभयं वेद विनाशेन विवेक ख्यात्या मरण जन्मादि हेतु

उल्लङ्घनकर विविक्तात्म दर्शनसे अनन्त कल्याणगुण परमात्मा की कृपा से भक्तवत्सलत्वादि गुणों की महिमा से अपरिच्छिन्न त्व असंसारित्व निर्दोषत्व आदि अनेक गुण साम्य रूप मुक्ति को पाता है ११

माधव मत में इस मन्त्र को अर्थ ऐसा होगा कि (अखीव छान्दस शङ्कराचार्य की तरह मानने से) (अ) विष्णु की संभूति जगत्कर्तृत्वादि शक्ति उस की भावना भक्ति वैदिक स्मार्त्त कर्म काण्ड (विनाश) दोनो साथ जान कर करने वाला कर्म काण्ड भक्ति प्रताप से यम को भी जीत कर भगवत्कृपा से अमृत मोक्ष को प्राप्त होता है १२

भट्टभास्कर मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होसकता है कि (अ) विष्णु की संभूति होना उस के भक्ति भाव का सफल

रागाद्युच्छेद रूप मृत्युलङ्घनु तरयेन संभूत्याप्समाधिप्रभावाज्ञिदि ध्यासन पक्व कैवल्यात्म स्वरूपाऽपुनरावृत्ति लक्षणममृत मश्नुते प्राप्नोतीतिभावः ७

मीमांसक मते संभूति मात्मनः कर्मशेषत्व फल सत्ता संभवं विनाशंचयाप्या देयोगासादित पुण्यता यागादि विनाशोनानलज्ञ स्यादृष्टं याकार्यं लक्षणयाविनाशपदस्यतत्परत्वात्यस्तद्भयंवेद वेतिसविनाशेन अदृष्टेनमृत्युं तीर्त्वा भूलोक जन्म रूप मृत्युपर-म्परांतीर्त्वा संभूत्या विधि शेषात्म संभवेन अमृतं स्वरूपस्याद्रुकलं शताश्वमेधि लभ्या पुनरावृत्त स्वर्ग फलं मोक्षाख्यमश्नुते लभते इति ८

भा० यतएव मतः समुच्चयः संभूत्य संभूत्युपासनयोर्युक्त एवैक पुरुषार्थत्वाच्चेत्याह संभूतिंच विनाशंचयस्त द्वेदोभयंसह

होना और उपादान भाव उसी भिन्ना भिन्न हरि को जगत् का होना (संभूति) (विनाश) कर्म जो कि भगवत्परायण किया गया उन दोनों को साथ २ समप्राधान्य भाव से जो जानता है वह (विनाश) कर्म से मृत्यु को तरकर (संभूत्या) हरि भिन्ना भिन्न भक्ति के प्रताप से अथवा उपादान उस भिन्ना भिन्न हरि के ध्यान से उसी की कृपा से अप्राकृत विभूति पाकर अपुनरा-वृत्ति रूप मोक्ष पाता है १३

निम्बादित्यके मतमें इस मन्त्र का ऐसा अर्थ होगा कि विवर्त भिन्ना भिन्न (अ) हरि की रज्जु में भुजङ्ग की तरह भावना भक्ति सेवा करना (संभूति) और (विनाश) वैदिक स्मार्त्त कर्म इन साथ२ दोनो को जानता है वहकर्म के प्रभाव से यम को भी जीतकर हरि भक्तिके प्रसाद से अप्रा-

विनाशेन विनाशो धर्मोऽस्य कार्यस्यसतेन धर्मिणाऽभेदेनोच्यते विनाश इति तेनतदुपासनेनानैश्वर्यमधर्म कामादि दोषजातंच मृत्युंतीर्त्वा हिरण्य गर्भो पासनेन ह्यणिमादि प्राप्तिः फलमृते नानैश्वर्यादिमृत्युमतीत्या संभूत्याऽव्या कृतोपासनया ऽमृतंप्रकृति लय लक्षणमश्नुते संभूतिंच विनाशंचेत्यवर्णलोपेननिर्देशोद्रष्टव्यः प्रकृतिलयफलश्रुत्यनुरोधात् ॥ १४ ॥ ९

हिरण्य गर्भोपासनयालब्धैश्वर्य धर्म ज्ञान वैराग्योऽष्टसिद्धि रधर्मादि फलं मृत्युंतीर्त्वा विजित्य अव्या कृतोपासनया प्रकृति लीनोभवति भुक्त्वाणि मादिफलमृइति संभूतिपदेऽकारस्यछा न्दसलुप्ति लुप्त स्यानु संधानेनार्थ इति भावः

विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तर पदलोपोवा सांख्य विज्ञानभिक्षु मते संभूतिं विविक्ताव्य संभवं विनाशं विनश्यमानस्य रूप प्रति

——— :o: ———

कृतदिव्यभोग सामर्थ्य को पाकर मरणके बाद भी हरिके भिन्न भिन्न ज्ञान से आलिङ्गित भक्ति के प्रताप से क्रमशः सायुज्य तक मुक्ति को पाता है १४

रामानुज मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होगा कि विशिष्ट द्वितीय चतुर्व्यूह नारायण की (संभूति) विभूति (विनाश) उसी भक्ति के अनुसारि कर्म इन दोनों को जो साथ २ जानता है कर्म के साथ सम प्राधान्य भाव अङ्गाङ्गि भाव से वो कर्म से मृत्यु को तरकर विशिष्टा द्वितीय हरि भक्ति से यहां यम को भी जीत और मरणोन्तर भी अप्राकृत दिव्य देहधार कर संभूति ज्ञान से अमृतत्व मोक्ष प्राप्त करसकता है १५

वल्लभ मत में इस मन्त्र का यह अर्थ है कि चित्परिणाम रूप शुद्धा द्वितीय हो जगत् हरि रूप अथवा (अ) हरि की विभूति

बिम्बंचय उभयं वेदस विनाशेन प्रतिबिम्बेनैव रागादि राहित्य लक्षणाभ्यास संपादनेन मृत्युं पुनरावृत्ति लक्षणंतीर्त्वातेन सहैव क्षिमाद्य संभूत्या कैवल्य ज्ञान रूप विविक्तात्म संभवेना मृतं मोक्षमश्नुते प्राप्नोति इति भावः १०

वेदान्त विज्ञानभिक्षु मते संभूतिं प्रकृत्यादिविविक्तात्म संभवमुपासादि कर्म विनश्यमान त्वाद्विनाशं चयस्तदुभयं वेदस विनाशेन कर्मणा मृत्युं संसारा गमन लक्षणमन्तःकरण शुद्धि वैराग्य द्वारा तीर्त्वा उल्लङ्घ्य संभूत्या विविक्तात्म विज्ञानेना नन्तकल्याण गुणकपरमात्म भक्ति तदीयकृपाभक्तव-त्सल त्वादि गुणमहिम्नाऽनन्तत्वा परिच्छिन्नत्व मुक्तत्व निर्दोष त्वासंसारित्व दुःखादिरहितत्वानेकगुणैःसाम्यमपुनरावृत्तिलक्षण ममृतं मोक्षमश्नुते लभत इतिभावः ११

रूप (संभूति) और (विनाश) कर्म वैदिक स्मार्त्त जो इन दोनो को साथ जानता है वह यम को भी जीत कर कर्म फल के ज्ञान के प्रताप से अपुनरावृत्ति मोक्ष को प्राप्त होता है १६

नकुलीश और शैव मत में यह अर्थ है कि शिव नित्य सुख पशुपति नाथ को कर्म के साथ जानता है और उस के दीक्षित होकर उस के चन्द्र शेखर ध्यानादि भक्ति काण्ड के साथ वैदिक स्मार्त्त सत्कर्मों का आचरण करता है वह यम को भी मार्कण्डेय की तरह जीतकर वह उसी भक्तिके प्रसादसे औरसदा शिव की संपत के लाभ से दूसरे शैवों के मत में अभेद होने से पहलों के मत में भेद से अपुनरावृत्ति मोक्षको प्राप्त होता है१७

माहेश्वर मत में अर्थ है कि चन्द्र शेखर व जगत कारण व विभूति भूषित व शुभालङ्कार भूषित महेश्वर को कर्म के साथ

मा॰ध्व मते शंकराचार्य वद्कारोलुप्तो द्रष्टव्यः तन्मात्र विष्णोः संभूतिं जगत्कर्तृत्वादि भूतिंतद्भावनाभक्त्याख्यां विनाशं वैदिक स्मार्त कार्यं जातंच यस्त दुभयं वेदस विनाशन कर्मणा मृत्युं तीर्त्वा यममपि विजित्य विष्णुकृपया संभूत्या अमृतं मोक्ष मपुनरावृत्ति लक्षण सालोक्य समीप्य सारूप्यात्मद्रनुतेपाप्नोति इति भावार्थः १२

भास्कर मतेतथैव भिन्ना भिन्न स्यास्य विष्णोः संभूतिं भक्ति भाव मित्य कारलोपात् संभूति मुपादाने साक्षादेवब्रह्म हरिभिन्नाभिन्न संभवमेवविनाशं कर्मचतदर्पण वैदिकस्मार्त्तं यस्त दुभयसंमपूाधान्येनवेदवेत्तिसविनाशेनकर्मणामृत्यु तीर्त्वासंभूत्या भिन्ना भिन्न हरि भक्ति पूभावात्साक्षादु पादन तादृश हरि ज्ञानात् संभूति पदार्थात्तत्कृपा ‖ सादिता प्राकृति विभूति रूप

अपने अदृष्ट के मुताबिक फल दाता समझ कर वैदिक स्मार्त शिव भक्ति दीक्षा सत्कर्म और उस से भी फल जनक अदृष्ट जानता है वह पूर्व जन्म और उस भक्ति से पैदा किये पुण्य के पूभाव से मृत्यु को तरकर यम को भी जीत कर शिव कृपा व उनकी संपत के लाभ से अमृत याने मोक्षको प्राप्त होताहै १८

पूत्यभिज्ञावादि शाम्भव मत में अर्थ है कि (संभूति) जगत्कारण शिव शक्त्यात्मक नित्य संवित्तत्त्व और (विनाश)स्पन्द सकल सृष्टि रूप और उस के हेतु को जानता है और भगवद् चोदित भैरव संपादित वैदिक स्मार्त्तसत् कर्म भक्ति दीक्षादि से आचरण में लाता है वह सर्व शास्त्र के अक्षर जानने वाला यम आदि घातकों को सर्वथा जीतने वाला सोहं पूत्यभिज्ञाता यहां और परलोक में सुख को अपुनरा वृत्ति प्राप्त होता है१९

संभूत्या सहवाऽमृतम पुनरावृत्ति लक्षणंमोक्षमश्नुते सालोक्यसामीप्य सारूप्य सायुज्यान्तं लभते इति भावः १३

निम्बादित्य मते विवर्त्त द्वितीया द्वितीय स्यास्य संभूतिं रज भुजङ्गवत्तद्भावना लिङ्गितपरिचर्यात्मक तद्भक्तिसंभयं विनाशं कर्म तदुभयंयोवेदवेत्तिस विनाशेन कर्मणा मृत्युं तीर्त्वा यमनपि विजित्य हरि भक्ति प्रसाद लब्धा प्राकृतिक दिव्यवपुष शरणागतेः संभूत्या तत्सामा लिङ्गित भक्त्यासमश्नु तेऽमृतं क्रमशः सायुज्यान्तम पुनरावृत्तिलक्षणंमोक्षं विद्यांचाविद्यामित्यत्रोक्तौ ट्पर्यौ वैष्णव मते दार्ढ्याय पुनरुक्तः शब्दान्तरप्रकारान्तरेणेति ध्येयम् १४

रामानुज मतेस्य विशिष्टा द्वितीयस्यच तुर्व्यूहनारायणस्य संभूतिं विभूति संपत्तिं विनाश तद् नुसारि कर्म विनाशब्देनसह

शाक्त मत में अर्थ होगा कि (संभूति)शिव विष्णु कारण जगदम्बा (विनाश) कर्म वैदिक स्मार्त्त जगदम्बाकी भक्ति का इनकेस्वरूपको अथवा जगदम्बामे ही सभपैंदा होताहैऔरउसी से सभ प्रलय होता यह जानता है वह यमादिक जीत कर उसी जगदम्बा के प्रसाद से यहा और परलोक में आनन्द सभी प्रकार के लाभ करता है २०

साहित्य मत में इस मन्त्र का यह अर्थ है कि असंलक्ष्य क्रम व्यङ्ग्यत्व रूप उत्पत्ति (संभूति) अथवा विभाव और अनुभाव (विनाश)भावनाचर्वणा रूप अथवा संचारि भावस्थायि रस के आस्वाद कालमें अभिव्यञ्जक कोटि में इनको जो जानता है साथ हरि कीर्तन श्रव्य नाट्य दर्शन वैदिक स्मार्त्त हरिभक्ति अनुभावरणोंके साथ करताहैवह कर्म से यम को भी जीतकरअपन

महदात्मिकां भक्तिं यावस्तदुभयं विशिष्टं सह कर्मणा वा कर्म
भ्या वह संभूतिं वा वेद वेत्ति स विनाशेन कर्म समपूधानतया ऽङ्गा
ङ्गि भावेन याचरितेन मृत्युं लोकस्थं यमपि विजित्य प्राकृतभगवद्धि
भूत्वामृतं क्रमशः सायुज्याख्यम पुनरावृत्ति लक्षणं मोक्षमश्नु
ते इति भावः १५

यद्वा मते संभूतिं चिदचित्परिणामात्मकं शुद्धाद्वितीयं जगत्
हरि रूपमस्य वाहरेः संभूतिं विनाशं कर्म च तदुभयं वैदिक स्मार्तं च
यस्तदुभयं वेद कर्मणा मृत्युं लोकस्थं यममपि विजित्य संसारं वा पुनः
पुनर्जननादि लक्षणम प्राप्य मृत्युत्तरं वा कर्मफलेन महर्षं भूत्वा
ज्ञानेन सालोक्यादि क्रममृतं मोक्षं भगवल्लीला स्वभक्तिप्रसादात्
प्राकृतदिव्यवपुः प्राप्य समुपलभ्य नाम स्वादुफलकत्वातपुनरा
वृत्ति राहित्यमश्नुते प्राप्नोति इति भावः १६

लोक को जीतकर स्वयमेव ब्रह्म से दूरतर आनन्द को प्राप्त होता
है २१

समीक्षक मत में अर्थ ऐसा होगा कि परस्पर निन्दा द्वेष
रहित होकर भक्ति भाव ही उचित है इस से द्वेष छोड कर
उभयांश पूर्व पक्ष को त्याग एक परमात्मा में सब की भक्ति की
एक वाक्यता करना उचित है इस से देवी आदि सृष्टि
स्वीकार के वही निर्विशेष शुद्धाद्वितीय नाना नाम ध्यानों से
पूजनीय और भजनीय धर्म ज्ञानवैराग्य ऐश्वर्य सबके सोहं भावसे
भक्त्यादि संपादितसुख विशेषके हेतुके निर्विशेष ज्ञान से परम
मुक्ति के हेतु वैराग्यांश से भूमिका का संपादक विनाश याने
कर्म वैदिक स्मार्त्त इन दोनोंको जो जानताहै वह उसी भक्ति
के प्रतापसे वाचिक कायिकपापोंके विशेषणांश मेंनष्टहोनेसेभक्ति

नकुलीश पाशुपतमतेसंभूतिं विनाशमुत्पत्तिनाशहेतुशिवंनित्यसुखं पशुपति नाथंयस्तद्रूपमुभयं वेदकर्मणासहद्वितीयत्वात् वेत्तिकर्मच जगदुत्पत्ति निमित्त स्वतन्त्र तटस्थहेतुं चशिवंवेदसमीतिचन्द्रवी जेनतत्स्वरूपार्थ बोधनाच्चन्द्रभालभूतिभूषितं चपरंवेत्तिसकर्मणा मृत्युं तीर्त्वा यममपि विजित्य संभूत्यात निमित्तेनसदाशिवभूत्यै श्वर्येण वामृतं मोक्षमश्नुते प्राप्नोति इत्यर्थः १७

माहेश्वर मते संभूतिं संभवं जगतोभूतिहेतुं वाभूतिचन्द्रविशिष्टं भालादौ विनाशंकर्मचादृष्टं वैदिक स्मार्तं प्रौढतर शिव भक्ति दीक्षासह कृत कर्मजनितं यस्तदु भयंवेदवेत्तिसंपादयितुं तथा पूर्वत स्योत्पत्ति हेतुं स्वादृष्टवशेनैव महेश्वर सिक्षानन्तरंमहेश्वरंयः स्वीकारोतीतियावत्सविनाशेनकर्मणामृत्युं तीर्त्वा संभूत्याशिवेनत त्कृपातदैश्वर्येण वाऽमृतं मोक्षं सायुज्यात्तमश्नुतेप्राप्नोतीत्यर्थः१८

प्रत्यभिज्ञा दार्शनिक मते संभूतिंच जगद्धेतुं भूतां नित्यसं विदाख्यशिव शक्त्यात्मचिदानन्दतत्वं विनाश्यत्वाद्विनाशंस्प न्दंच सकल सृष्ट्यात्मकं तद्धेतुं च भगवद्चोदि भैरव बोद्यमात्मक स्पन्देन संपादितंवा वेत्ति दुभयं सहविनाशेन शुभ कर्मस्पन्देन मृत्युं तीर्त्वाय मादीन पिविजित्यसंभूत्या नित्य सं विदात्मना सो हमिति प्रत्यभिज्ञयाब्रह्मा मुत्रचामृतं सुखं मोक्षाख्यमपुनरावृति लक्षणमश्नुते प्राप्नोति इति भावः १९



सुखोपभोग पाता हुआ और देवता संपत्सुखोपभोग का लाभ करता हुआ उसी निर्विशेष ज्ञान से सोहं प्रत्यभिज्ञा वाला सब देवताओं की सायुज्य तक मुक्तियों को लाभ करता हुआ परम मुक्ति को प्राप्त होता है इति भावार्थः २२

शाक्त मतेऽसंभूति मितिच्छेदे श्रीविष्णुःसंभूतिश्चन्द्रप्रसन्न-धारी शिवोऽयस्या इतिबहुव्रीहिणा। शिव विष्णु कारणरूपा विना-शंकर्म वैदिक स्मार्त्तं विनाशयत्य शुभं पापकं दुःखंच जगदम्बा प्रेमातिशय भक्ति लक्षणंचकर्मयद्वा संभूतिमुत्पत्तिं विनाशचतदुभ यंतस्या जगन्मातु रुभयं वेदवेत्ति अत्रार्थे सहेति सहकर्मणानृत्युं तीर्त्वायममपि विजित्य संभूत्याऽमृतमानन्दमयं पुत्रइव मात्रा संपादितम् गूढ लिङ्गाय सालोक्य सामीप्या त्मम गूढा लिङ्गायमालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्याख्यंचा पुनरावृत्ति लक्षणमश्नुते प्राप्नोतीत्यर्थः २०

साहित्य मते सम्भूति मुत्पत्तिम संलक्ष्य कमठवङ्ग्यरूपां कार्योत्म कानुभावाद कारणात्मक विभावालम्ब नोद्दीपनादि कंचा विनाशमस्थिरत्वात्संचारि सात्विक स्वेदो द्गमादिक क्षणिक विभावादि रस्य मान भावास्वादं वायस्तदुभयंतस्यरस स्यस्वाद्यात्मका स्वहानन्द सन्दोहस्ववेद वेत्ति सहहरि कीर्तन वैदिक स्मार्त्त कर्मणाचविनाशेन कर्मयामृत्युं तीर्त्वायमं विजित्य संचारि भाव दुःखंच शोकं विजित्यचा संभूत्या रसचर्वणयाःकारणे विभावानुभावादि भिर्वाऽमृतं मोक्षम पुनरावृत्ति लक्षणमानन्द सन्दोहंच दृढतरवासनामश्नुते प्राप्नोति इति भावः २१

समीक्षक मतं परस्पर निन्दा द्वेषादि राहित्येन भक्ति भावो विस्वाद्वू द्वेष परि त्यागेन हेयं निन्दांशं परित्यज्या विक-ल्पितेक वस्तु विषयकत्वे विरुद्ध दे षांशहानेन सकलैक वाक्य तया मात्रादि सृष्टि स्थो कारादि सुद्धात्मनिकर्म कर्तृत्व भोक्तृ त्वादि भावस्य जीव परमात्म भावस्य बोधसामानाधि करण्या दिशेषणी भूत धर्मं ... वैराग्यैश्वर्यादेर्जगदम्बादि सकल देवता

नामजपध्यान तदर्थोदिभक्ति विशेषणात्मद्भूदेव परमात्मविशेषण शुद्धाद्वितीय संसर्गाधिक्य लाभेन माया बाध सामानाधिकरण्येन निर्विशेषा द्वितीय विशेष्य मात्रताभान पूतिबन्ध निवृत्तिसंपादने नायनर्योयत्सभूतिंषविशेषणानां धर्मादीनामाधिक्येसोऽयमितिना नानामध्यानशिवशक्तिविष्णुगणपत्यं भैरवात्मनां शुद्धाद्वितीया नांभक्त्याधिक्यानुष्ठीयमान ज्ञानाद्विनश्यमान पापकत्वेनास कल्यजनेन वैराग्यातिशयेन भूमिकालाभसंपादनंविनाशंकर्मवैदिक स्मार्तं न साधु कर्मपापादेश भक्तिविहीनत्वादिजादेरभावंयतो भक्त्या संपाद्यमानं कूपखानकवद्द् यस्त्वुभयं वेद वेत्तिसहजीव विशेष विशिष्टे तादृश शुद्धाद्वितीये कर्मणासगुण भक्त्यस्तवैदिक स्मार्तं कायवाचिक मान सेनशुद्धच माया रहित विशेष मात्रे निर्विशेषबाधेनच समप्राधान्येन न्यूनाधिकभावेनवा वेद वेत्ति सभक्ति तारतम्येन विनाशेन कर्मणा पापनाशेन वैराग्याधिक्ये न मृत्युं तीर्त्वाऽयमपि विजित्य संभूत्या नारायणः प्रियतर भैरवेशः सोऽहं सदाशिवपतिर प्रमेयइत्यादिजगद्रक्षाविष्णुशिवादि भैरवान्त प्रेमा लक्षण भक्ति ज्ञान पुञ्जात्मक सोहमितिभाव न ध्यानादितः भैरवादि शिवान्तलोकेसालोक्य सामीप्यसारूप्य सायुज्यान्तमनु भूया गूढ लिङ्गो भैरवस्य मातृलोके सालोक्य सामीप्य सायुज्यान्तं भैरव निगूढ लिङ्गश्च सालोक्य सामीप्य सायुज्यान्तमनुभावोमातृ लोकेसालोक्य सामीप्य सारूप्यसायु ज्यान्तमनुभावो मात्रा सहतदीयसप्त भूमिकाःकालोत्तरं निर्वि- शेष माया रहितोभवतीत्यमृत मेवानन्द प्रचुरम पुनरावृत्ति लक्षणं मोक्षमश्नुते लभते इत्याहस कला विरोधिवेदो भगवानि त्यधन्ययुक्ततेतिध्येयम् २२

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापि हितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ॥ १५ ॥

हिरण्मयेनि हिरण्यमयेन पात्रेण ज्योतिर्मयेन सत्यस्य आत्मनोऽपि हितमाच्छादित मावृतं मुखमक्ति वादिनांम तान्तर वैमुख्याद ज्ञानिनां जीवतामपि मृता नामपि मुख्य स्वरूपत्मा स्मुखं हेपूषन् सूर्य सकल कर्म पोषक सत्य धर्माय सत्यस्य परमात्म नोलाभायदृष्टयेभक्ति मतान्तरेसाक्षात्कारायान्येषां वैशेषिका दीनामज्ञानाय अपावृणु जीवतः प्रार्थनेयं देहपाते मृतानामपि सूर्य लोक प्राप्तया स्वस्वलोक प्राप्ति रिति भक्ति वादिनां वैशेषिकादीनांसूर्य प्राप्त्यातेनसहपरमात्मनोऽपायरूपदर्शनभा

ज्योति रूप प्रकाश रूप पात्र करके सत्य रूप जो परमात्म है वह ढका है भक्ति वादियों के मतमें सूर्य लोक द्वार अपने २ देव लोक में जाना है इस से अपने २ देवता का मुख सूर्य से ढका है या भक्ति दीक्षा के अभाव से अप्राप्य है।

मतान्तरों में अज्ञान से उस का मुख्य स्वरूप नहि जाना इस से सूर्य नारायण सर्व कर्मों के पुष्ट करने वाले सत्य रूप परमात्मा के लाभ के वास्ते भक्ति वालों के जीते हुये भक्ति संपादन के लिये मरों के साक्षात्कार के लिये मतान्तर वालों को जानने के लिये तू अपावृणु खोल दे यानि प्रकाश करदे यह सब मतों के साधारण अर्थ हैं वैशेषिकादि मत में अपने २ मत के परमात्मा के अज्ञान को आवरण कहते हैं।

भक्ति वाले अपने २ देवता के पास पहुंचने में रुकावट या भक्ति के स्वरूप फलमें रुकावटको आवरण कहतेहैं इसीमंत्रसे

हस्रतिर्गीतमस्यमते योगेश्वरस्यचेति संक्षिप्तः सर्वमतेषु तुरुयोर्थः भक्ति वादिनांमध्वादिषु हिरण्मयपात्रात्वोऽस्यधामा हेद्याज्ञानस्य स्यधारयेति सूर्यसमस्य पोषकस्यगुरोरयेपि प्रार्थनैवेतिध्येयम् १९ मतानां संक्षेपेण सर्वेषामावरणंच मताज्ञानलक्षण मेवेतिदिक्अत्र शङ्कराचार्यःनानुपदेविवित्त साध्यं फलमाहस्थलकां प्रकृतिसंसार गतिःअतः परं पूर्वोक्त मात्मैवा भूद्विजानत इतिसर्वात्मभावएव सर्वेषणा संन्यास नाम निष्ठाफलमूएवंद्विप्रकारः प्रवृत्तिनिवृत्ति लक्षणो वेदार्थोत्र प्रकाशितःतत्र प्रवृत्ति लक्षणस्यवेदार्थस्यविधि प्रतिषेध लक्षणस्य कृत्स्नस्य प्रकाशने प्रवर्ग्यान्तं ब्राह्मण मुपयुक्तं निवृत्ति लक्षणस्य वेदार्थस्यप्रकाशनेऽत ऊर्ध्वं वृहदारण्यकमुप युक्तं तत्र निषेकादिश्म शानान्तं कर्म कुर्वंश्चि जीविषेद्योविद्यया सहा परब्रह्मविषययातदुक्तं विद्यांचाविद्यांच यस्तद्वे दोभयं सह

गुरु आगे प्रार्थना भी होती है। हे पूषन् भक्ति के पुष्ट करने वाले सूर्य सर्व मन्त्र प्रकाशक जो उस परमात्मा का स्वरूप उस परमात्मा ज्योतिर्मयने अपने ज्ञान रूप पात्रमें रखा हुआ है वह तुम उसी परमात्मा के भक्ति सुखके लाभ के लिये हमें खोलदो याने भक्ति सन्मार्ग का उपदेश हमें भी दीक्षादि से करो १९

शङ्कराचार्य का हमारी टीकानुसार यह अर्थ है पहले दो प्रकार की प्रवृत्ति निवृत्ति रूप निष्ठा वेदार्थ कही जिस में प्रकृतिलय तक संसार गति है सर्वात्म भाव जो पीछे कहा है आत्मैवाभूद्विजानत उस से अनन्तर संन्यास आत्मकत्व भाव रूप निष्ठात्व यह और कलि से इतर युगमें औरनिवृत्ति चक्र पतित का कलि में भी वहि रङ्ग संन्यास निष्ठा वह निवृत्ति है प्रति षेध विधि दोनो के प्रकाशमें कर्म काण्ड ज्ञान निवृत्ति में वृह

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते इति तत्रकेनमार्गेण मृत त्वमश्नुते इत्युच्यते तद्यत्त सत्यंस आदित्योयएषएत स्मिन्मण्डले पुरुषोयश्चायं दक्षिणोऽक्षन् पुरुषएतदुभयं सत्यं ब्रह्म णो यथोक्त कर्म कृत्वयः सोन्त काले प्राप्ते सत्यात्मान मात्मन प्राप्ति द्वारा याचते हिरण्मयेन पात्रेणहिरण्मयमिव हिरण्मयः ज्योतिर्मयमित्येतत् तेन पात्रेणेवापिधान भूतेन सत्यस्यादित्य मण्डल स्थस्य ब्रह्मणोऽपि हितमाच्छादितं मुखं द्वारंतत्वंहेपूषन् पावृणुअपसारयसत्य धर्मायतवसत्यस्योपासनात्सत्यं धर्मोयस्यमम सोहं सत्य धर्मातस्मैमह्यमथवा यथाभूतस्यधर्मस्यानुष्ठात्रे दृष्टये तवसत्यात्मन उपलब्धये ॥ १५ । २ ॥

सकलोपनिषदर्थं निरूपणान्मार्गदर्शन वाक्यमुत्थापयलिख द्वा निर्गुण चिन्तारतानां निवृत्ति चक्र पतितानांकेषांचिद्गुणान्तर

बृहदारण्य कभी उपयुक्त है जन्म से मरण पर्यन्त वर्णाश्रम कम करता ही रहे सप्तम भूमिका पर्यन्तके परम हंसकी तोउत्क्रान्ति नहीं लिखी इस से निवृत्ति चक्र पतित परम हंसके अतिरिक्त के लिये सगुणोपासना भीहै विद्याद्या विद्यांच से वह कह चुके इस में कौन अमृत के लिये मृत्युतरण रूप मार्ग है वह कहा पूर्वम्यं ब्राह्मण में जो वह आदित्य सूर्य मण्डल में तप रहा है वही दक्षिण अक्षि में पुरुष (ब्रह्मा भिप्रायक प्रिद्धेयां प्रमा यवच्छिन्न चित में) है उन दोनो की गुणारोपसे अभेदोपासना भी करता है शास्त्रोक्त कर्मों को करता है । शाङ्करभाष्य में इसे दैवतोपासनाशेषपद्यापिबताकर ब्रह्म परत्व सिद्धान्तकियाहैतथापि उपासना काण्ड छान्दोग्य में भी उभयतया ब्रह्मपरत्व तात्पर्याव धारण करने पर भी फल तो देवता मनुष्य साधारण सगुण ब्रह्म

संन्यासि शास्त्र परिनियत काल कलियुगवर्तिनां विनैव संन्यासा
श्रमं कर्मत्यागि सप्तम भूमिकास्थितानां चनतस्य प्राणा उत्क्राम
न्तिइहैव समवलीयन्त इतियुक्तेरुत्क्रान्ति निषेधात्सद्भिन्नस्यमार्ग
प्रदर्शनं सगुण विद्याया अप्युपासकस्य विद्यांचा विद्यां चेत्यादि
ना प्रदर्शित स्यासक्तस्यापि इत्याह सानुषत्यादि उच्यते इत्य
न्तम् यागादिकानां विद्या मित्याद्युक्त समुच्च योपासनाना
मिदर्थः
सर्वैपवोति व्यर्थपदा वाधसमानाधि करण ज्ञानमिष्ठाफलमित्यर्थ
नासत्यतयाज्ञायमानतत्सामानाधिकरण्यांनिवृत्ति रीतिध्येयमूतया
पतदुक्ता नुवादकमुप युक्त मित्यन्त मित्युक्ता प्रवृत्ति लक्षणस्य
कर्मणो द्विविध मिष्टाविद्वद्विद्वत्कृतस्यफलमभिधातुं यानमार्ग
नाहतत्रेतितव सत्यात्मन इति आत्मनएवात्म भूतस्य सत्यस्ये

उपासना के साथ समानाधि करण करने में भी वाच्यार्थ लेते हैं
यही तात्पर्य है) वह अन्त काल में अपने आत्मा को ही आत्मा
की प्राप्ति मांगता है पात्रके तुल्य आवरक ज्योतीरूपही आदित्य
से उसी मण्डल स्थित ब्रह्म का द्वार जो आवृत है हे पूषन् सूर्य
हटादे तेरे हो सत्यं ब्रह्मोपासीत यह छान्दोग्य के पाठानुसार
सत्योपासना कहचुके मुक्तको अथवा यथार्थ अपने धर्मके अनुष्ठान
करने वाले को तेरी सत्यात्मा की सगुण ब्रह्म की प्राप्ति के
लिये ॥ १५।२० ॥

इस मन्त्र में समीक्षक मत में शङ्कर की तरह प्रारब्ध के
बिना निवृत्ति चक्र के अभाव होने से और आज तक भूलोक म
सप्तम भूमिका के अनुपलम्भ से मनोरथ मात्र संभावना
से केवल निर्गुण का उपदेश छोड़ कर सब के ऐक्य तात्पर्य में कर्म

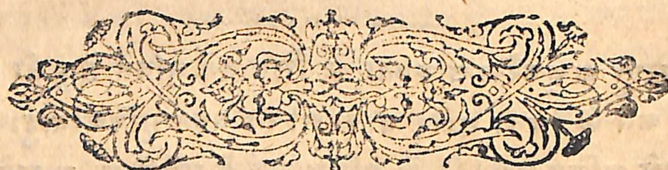
त्यर्थः ।

अस्मिन्मन्त्रे समीक्षकस्य मते शङ्करस्येव प्रारब्ध मन्तरा निवृत्ति वक्त्राभावेन भूलोकेसप्तम भूमिकायाःप्रायोऽहूयावधि मध्यादि मार्तेपूर्णरीत्याऽनुपलभ्य मःनत्वेन संभावयितुं मनोरथ मात्रतया केवल निर्गुण चिन्तनानुपदेशेन सर्वथा मैकदमते कर्मणो यथासंभवस्वीकारस्य शरीरयात्राकृत्यावश्यकत्वात्मर्थं मार्गनत्वे मतल्लोक प्राप्तेऽङ्गमूमातुरसप्तमभूमिकयातत्र आप्तौकैवल्यमिति स्वीकारेण मन्त्रार्थेन विशेषः पूर्वस्माद्भक्तिवादिनांसूचितादर्था दभक्ति वादि भिस्तत्तद् देवता निष्ठैःसूर्य प्राप्त्याऽवति भूलोका गमन योग्य कर्मणि स्वैक देवता लोकादिना स्वच्छन्द चारितया सुखानुभवःपरकीयेदेवता स्वरूपादौनतदधिकारत्वतःसमीक्षकस्य कस्येनचिद्विरोध इति सूर्यादि मात्रन्त सर्व देव संपन्नाभो ऽप्राकृत देह कौशल्यं लीलया समीक्षक मते नेतर भक्तवत्प्रकृति मन्तरा णा यथावत्वम प्राकृतत्वम संभवात्किन्तु प्रकृति सृष्टि क्रमरूप

रला परन्तु शङ्करैक वाक्यता के लिये उसे मुक्ति हेतु तो नही माना कर्म के बिना शरीर यात्रा भी तो षष्ट भूमिकान्तदुःसाध्य है पहले भक्ति वादियों के सूचित अर्थ से सूर्यलोक द्वारादेवता लोक सुख प्राप्ति ही फल है समीक्षक मत के सब देवता लोको में सुखानुभव कर सकते हैं उन का विरोध न होने से कहीं तिरस्कार नही सूर्यसे लेकर जगदम्बा तक सब देवता की संपत्ति मिल सकता है प्राकृता प्राकृत दो भेद नहीमाने जातेअप्राकृत स्वेच्छा सृष्टि होने पर भी पञ्चभौतिक ही पदार्थ होगा सृष्टि क्रम विपरीत होगा यह बात जुदा है परन्तु ऐसा होने से भगवद् भक्तो के यहा जन्म द्वारा उसी जीवन्मुक्ति सुखानुभव करतेरहन

दृशमासगर्भस्थतां विना भगव ल्लीला भक्ति फलेस्वच्छन्दसंकल्प मात्र माध्यस्थ्यं तत्र सिसिद्दिक् जन्मैकर्षएक मात्र स्वर्गं पुमानर्थ प्रतिभाव:

से तो कोई बाधक नही अगर वैसी ही अधिक भक्ति होगी तो ऐसा हो भी जासकता है यही तत्वहै मार्ग का मांगना वहांका सुख छेकर और जगह का सुख लेना है ।



पूषन्नेकर्षेयमसूर्य प्राजापत्यव्यूहरश्मीन् समूह तेजोयत्ते रूपंकल्याणतमंतत्ते पश्यामियोऽसावसौ पुरुषःसोहमस्मि ॥ १६ ॥

पूषन्नेकर्षे इति हेपूषन् जगतः पोषकहेंयम नियमनकर्तः प्रजानाम् प्रजापतेरपत्य प्राधान्येन रसादान पाकादिनाऽन्नानां प्रजापालक हे सूर्य व्यूहरश्मी नितहततः आवरकान् पृथक् कुरुभयित्वा विशदीकुरु समूह विस्तृतानां वरणायसंहतान् कुरु यत्तेतवरूपंतेजः कल्याण तमंतत्सत्यं प्रकाशकमहं पश्यामीत्यैतावान्प्रायः सर्वेषां तुल्योर्थः १ योसावित्यस्य वैशेषिक मते योऽसौकर्मकृत् वैदिक

(१०२)

इस मन्त्र का हे पूषन् जगत् के पुष्ट करने वाले हेयम नियम करने (व टाइम बनाने) वाले प्रजाओं के मालिक जल का खींचना अन्नों का पकाना आदि से प्रजा के पालक हे सूर्य तू अपने रश्मिओं को इधर उधर हटा (जो तेरे में मेरा आत्मा गूढ है इतना अभेद वाद का अर्थहै) वाजो ढकरहेहैं तरब आत्म वस्तु उस को तेज कल्याण रूप तुझ (अपने आत्माके इतना अभेद वाद में अर्थ है) को मैं देखूं इतना अभिप्राय सभ मत के साथ तुल्य है इस में जुदा २ नही लिखा (योसावसौपुरुषः सोहमस्मि) इतने अंश का अर्थ भेदवादादि में जुदा कहा जाता है ॥ १ ॥

वैकणाद मत में है कि जो यह सत्कर्म करता वैदिककर्मादि सब पुरुष अग्नि से होकर वही मैं तेरे पास आया हूं । अथवा जो यह परमात्मा उसी का होने से अभेद भावना के तरीके पूर्वक वही तू और मैं भी हूं ॥ २ ॥

स्मार्तः असौपुरुषोऽग्नि इयो भूवमहं सोऽस्मीदानीन्तनमल्लोक गतइत्यर्थः यद्वा परमात्मायोऽसौतदीयत्वादभेद भावनयातदिवा दिभसौभवान् पुरुषः सोहम् इति तदर्थः १

गौतममते योऽसौकर्मकृज्जीवो योगेश्वरः परमात्मा सोऽसौत दीयाधिकारत्वात्त दिवमत्रानृत्वरत्पोवाऽसौ पुरुषः सोहमस्मि भवामिकदाचित्समाधि कल्पेभय द्विषे पुस्वरूपाधिकारस्पृशित्व स्वयमपि अत्यन्त योग समाधि बललाभं संवादयेयमुक्तिटित्वम् पृत्येक मेकत्वा ह्वातमनो वत्सं माम उपदेश इति ध्येयम् २

गौतम मत में जो कर्मकृत जीव योगेश्वर पालक कोई भी वर्तमान काल का परमात्मा है वही(याने उस काममें वजीर आदि की तरह अधिकारि होने से अभेद भावना से)आपहो में भी आप के द्वारा वैसा तरीका देखता देखतां समाधि से आप लोगों की कृपा से हो जाऊंगा ॥ ३ ॥

दोनो के मिलाने वाले तार्किक मत से नवीन प्राचीन दोनो के मत से वैशेषिक मत की अभेद भावना की प्रार्थना का ही अर्थ है ॥ ४ ॥

दयानन्दमतमें अर्थ होसकताहै कि वैदिक,गृह्य, दयानन्द स्मृतिके विनियोग मुताबिक काम करने वाले वह पुरुष उपास्य जीव और वही अन्तःकरण रूप सूक्ष्म दशा में मर कर आया वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म यहां में हूंगा प्राजापत्य शब्द का भी इस मत में प्रजापति परमात्मा का नाम होने से सूर्य की कार्य कोटि का होने से हुआ (कश्यप प्रजापति का बेटा अदिति के गर्भ से हुआ यह अर्थ तो इन की बुद्धि का नही) अपत्य प्रत्यय व्याकरणानुसार ऐसा गौण पत्यर्थ में नही होता ऐसा कहो तो

तार्किक इयौ मयोच्छिष्टत्वमूतन पूाचीन मतयोर्वैशेषिक व देवा भेद भावनायाः कर्म फला धिकार लातयंति पूार्थनेति घयेदम् ३

यो नौपूकृति महितो वैदिक गृह्य दयानन्द स्मृति विहित कर्मकृत् अनौ पुरुषो ऽयादय जोवः सूक्ष्माग्नः करण दशापन्नो अस्वथः सोहं भवामि अर्चिरादि मार्ग इव दयाविशेषपन्नो भवामि पूजा पत्यशब्दस्य परमात्मनो जगत्कारण त्वेन तत्कार्यंपरः गौजरत्यार्थं कारत्वार्थस्य मापालक परोवा पूार्थनाक्मौणी तेजः



मुख्यापत्यार्थ के पूत्ययार्थ तद्गुणशत्व लाक्षणिक शब्द का स्वार्थ उपयुक्त इव होगा अमुख्यार्थ पूसिद्ध यद्यपि कहीं है तो नहो।

तथापि वेद के यहां किस बात की त्रुटिहै इसकी समीक्षा पूजा पत्य शब्द की उपपत्ति मैं तो मेरे बतन और लगाने पर भी दयानन्द वैदिक त्वात् इव अगतिक गति के बिना कुछ नही उपपत्यार्थ में तत्पदं का कुछ संबन्ध रखता है यह स्वकाय कारि त्वादि अपूसिद्ध अपूयुक्त परम्परा संबन्ध है संयोगादि सबन्ध तो मनुष्य साधारण है उस में निरुक्तकृद् की तरह दयानन्द को महर्षि नमानने वालोंकेसामने संकोचेन अप्पपूवृत्तयोर्विभक्ति दयानन्द कृत पूवृत्तयः ऐसार उत्तर कुछ कार्य कारी शोभक्त के सामने तो नही सकेगा औरअगर जड सूर्य की या उसमें परमात्मा की पूजा मानलो तो मूर्ति पूजा वाले क्यों निन्द नीय और उन के पूतिकूल बगुला और ठग सत्यार्थ पूकाश ३१६पृष्ठमें भटियारेके टट्टू कुम्हारके गदहे समान और उन का सत्यानाश परमात्मा क्यों न करे ऐसे कृतघ्न दुष्ट बुद्धि दुष्ट पुजारी ऐसे पूकाश ३१८ में अपने देवता को अङ्गुष्ट दिखा कर तू घंटाले

प्रत्युत मूर्त्यंश मूर्त्यादि वस्तुत्वात् तत्र व्यापक परमात्म नोवा संवोध्यत्वात् इति तत्तत्र मतेयं संपादयितुं शक्यते ॥

अत मूर्त्यंशमूर्तौ पूजा मूर्तिर्वापूजा पि विचार कर्तुंमारब्धि तुं शक्या व्याप्यत्वादि समीक्षा पूर्ववत् पूषन् आस्तिकानां, यच नास्तिक दयानन्दादीनां, पालक पूजायाः, रक्षीन् पोषकान् यन्धि तून्नास्य पततः स्वकर्मणि प्रेरय यत्तकल्याणम तेजः सत्यप्रकाशकं मत्य पक्षपातितदृढंपश्याम्यिोदयानन्दादिनास्तिक तत्वदर्शी मनीभवान् पुरुषः सोहं साक्षी भवान् वक्ताहमपितेषां

मूढ़ों को इत्यादि इत्लकात २२४ पृष्टमें महमूद गजनवी को लूः ऐसे इतुरात लिख कर और हिन्दु मूर्ति पूजक की दुर्दशा कारी बता कर हाय क्यो पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए ऐसा इल्फाज ३१० पृ० में जो कुछ देह में मल मूत्रादि हैं वह भी गोसांई जी के अर्पण क्यों नही क्या मीठा २ गहप्प और कडुआ २ थू ।

गोसांई बाभी परमूंह तक मल के अर्पण को ढंग से लिखना ब्रह्म संबन्धसे सर्वदोष निवृत्ति इसशब्दकी व्याख्यामें संबन्धमें स्पर्शादि संबन्धोंकी जगहयौन संबन्ध यानेसाकबनाता संबन्ध) अर्थ का तरीका लेकर चोरी जारी माता भगिनी कन्या पुत्र बधू (पुतहू) गुरु पत्नी आदिसेवोन(भोग)करना ऐसा अर्थ लिखना २१४ में उन्मत्त होकर चाहे कोई किसी की बहिन कन्या व माता क्यों नही जिस की जिस के साथ इच्छा हो उस के साथ कुकर्म करतेहैं ऐसा स्वामियों को साफ लिखना इत्यादि महा शत्रु की तरह दण्डनीय बुद्धि में क्यों आवई और व्याप्य त्वादि समीक्षा तो कर ही चुके हैं सामान्य मन्त्रादकोंको विशेष

नास्तिक स्वेतच्छमनं चोपद्रव कर्त्तॄणां तेषां विना यमात्मनाना च्छमन स्यात्तऽस्येणा स्मद्भीऽष्टेषिकालेदृति मन्त्र स्यैव समीक्षार्थं श्च काल दृष्टिं स्यात साधारण शब्दानां विशेषपर्यवसानमवोच्य तयाऽन्वयलाभात् ५

सांख्ये विज्ञान भिक्षोर्मते योऽस्माव संगः पुरुषोऽसावन्तः करण प्रति बिम्ब रूप तथा प्रयन्तःकरणेशेते षति पुरुषः वैदिक स्मार्त्त कर्म ।

भूतयोहमयर्थोऽपि तथा भिमान बानास्तिकःमुक्तावल

में ही पर्यवसान होता है विशेषातिरिक्त प्रति व्यक्ति सामान्य नहीं तो उस रीति से संपूर्ण मन्त्र का यह समीक्षार्थ होगा कि हे पूषन् आस्तिकों के पुष्टि मार्गादि बनाने से पुष्ट करने वाले नास्तिक नाहकमें विरोध डलवाकर प्रजामें उपद्रव मचानेवाली अपनी तर्फसे पहली लेखनी चलाने वाले झूठ नियोगादि व्यभि-चारशास्त्रस्युत फैलाते हुए भी नाहक दूसरोंपर कलङ्क लगानेसे प्रजामेंअशान्तिफैलाकर सांप्रतिक राजाओंके कानून नदेखनेवालों कयन याने ऐसेस्वतन्त्र हमको बनाकर खुशरखने वाले राजाओंके राज्यमें ऐसे२ अशान्ति लेखसे आजतक दिनबदिन उपद्रव बढाने वालों को तुम्हारे बिना और कौन नियम कर्त्ता होगा तुम्ही यमरूप उन को दण्ड देने वाले यत्नकर्म में प्रेरणाही से हमारी आशा प्रेम भाव सुशान्ति राजोन्नति के बढाने वाले प्रजा का (जल सींचना अन्नपकाना आदि से) पालन करने वाले सूर्य तू अपने रश्मिओं को इधर उधर अपने २ काम में लगा जो तेरा कल्याण तेजः सत्यप्रकाशक सत्य आस्तिक मत का पक्षपाती भानपित् आदि नास्तिकत्व दृष्टि को दूरमयम तेरा स्वरूप

सङ्गाम्ऽरिपःकेत्यन प्राकृत बन्धो भवामि कैवल्यभानेन वस्तुनो मुक्तोपीति भावः ७

योगमते योगीअसङ्गः सोऽसौप्राकृत वृत्ति सारूप्येण व्यु त्थान काले कर्म कर्तृ वैदिकस्मार्त्तं सोऽहं भविम संप्रज्ञात समा ध्यनभवा दृशैश्वर्य शाली असंप्रज्ञात भाक्षी भाक्कीचत तथा नित्य मुक्तत्वा त्संप्रज्ञात विरहितोपिभवामि इत्यर्थः ८

मीमांसक मते यो मौनित्यत्व विभुत्वादि गुणको वेदान्त प्रति पादितो विधि शेषो वैदिक स्मार्त्तं कर्म कृत्सोहम् िन कल

—— :o: ——

है तू उसे जानता है मैं भी वैसा जानता अहिन हूं तू भाक्षी है मेरी प्रार्थना है कि ऐसे उपद्रविमत की नास्तिक स्वार्थ" को वाद्रवना की बुद्धि हटा कर शान्ति फैलाओ ३६ ग्रंथ से|पहले की दर अमल में २६ वीं वर्ष मे पहल २ की सुमति देकर राजा प्रजा में आनन्द बढ़ाओ सामान्य शब्दों का विशेष पर्यवसानसे भी यही अर्थ लाभ होता है ॥ ५ ॥

सांख्य और विज्ञान भिक्षु के मत में जो यह असङ्ग पुरुष है वही अन्तःकरण प्रति बिम्बरूप से पुरुष वैदिक स्मार्त्त कर्म करने वाला वहीयहां मैं वैसा अभिमानी देव सत्कर्म फलोपभो कर कैवल्य भागी होऊंगा ऐसा अर्थ है।

योग मत में जो यह असङ्ग पुरुष है वह प्राकृत वृत्ति सारूप्य व्युत्थान काल में सत्कर्म कर्ता ही मैं हूं संप्रज्ञात समाधि त तुम्हारे जैसे ऐश्वर्य वाला असंप्रज्ञात समाधि की दृढ़ता कर वाला नित्य मुक्त होने से संप्रज्ञात से भी रहित हूंगा ॥ ६ ॥

* वदं विषयं भाट्टमते गुरुमते नोपनिषदः प्रमाणम्

भोग योग्य भवादृशा धिकारवान् इत्यर्थः ९

शङ्कराचार्यमतेऽयंस्यमत्र यो परमात्मापि मन्डलस्थः सएवाक्षिस्थान स्थोऽहमिति यो भवान् सइववस्तु सोऽहमस्मि इत्यर्थः १०

एवमेवान्याक्षराणि

भा० पूर्वमिति ह यथन् भगलः पोषणा दृष्टाश्च कथैकः अपति गच्छतीत्येकर्षिर्हि एकर्षे तथा सर्वस्य संयमयाद्यमः हे तथा रश्मीनां पूराणानां रसानांचस्वीकरणात्सूर्यः हे पूषं पूषः

मीमांसक मत में जो नित्यतत्र विभुत्वादि गुण वाला ...न्त पुतिसादिन विधि शेष वैदिक स्मार्त काम करने वाला ...ो मैं हूं फल भोग के योग्य तुम्हारे जैसे अधिकार वाला मैं हूं यह अर्थ है ॥ ७ ॥

शङ्कराचार्य के मत में जो यह परमात्मा हो कर सूर्य मण्डल स्थित देव है वही साक्षिरूप पलि में स्थित है जो तुम ... में कहा वही जो तुम हो वस्तु सो वही हम हैं । ८ ॥

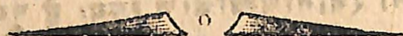
विज्ञान भिक्षु के मत में अर्थ है कि जो यह परमात्मा है पुरुष सर्वव्यापक है इस से परिपूर्ण तेरे में ही स्थित है वही ...य में भी होता हूं मुक्ति काल में मेरा भी इसी तरह ...प स्वरूप है ॥ ९ ॥

...व मत में जो यह पुरुष अणुकर्म कर्ता या वैदिक स्मार्त ...नसे दीक्षित वही मैं हूं परमभागवत तुम्हारे जैसा इसी धर्म का होने स मेरा तुम पर अभिमान है ।

अथवा जो यह हरि है वही यह पुरुष है वही तेरे में स्थित ... तेरे में स्थित होने से मेरी दृढ भावना से मैं ही हूं १०

यतेस्त्वत्व प्राजा पत्यः हे प्राजापत्य व्यूह विगमय रश्मीन् स्वान्
समूह एकी कुरु यत्ते ते तेजस्तापकं ज्योतिः यत्ते तवरूपं कल्याण
तमम त्यन्त शोभनं तत्तेतवात्मनः प्रसादात्पश्यामि किंचाहं न तु
त्वा भृत्यवद्याचे योऽसोवादित्य मण्डलस्थो व्याहृत्यवयवः पुरुष
पुरुषा कारत्वात्पूर्णत्वाऽनेन प्राणबुद्ध्यात्मना जगत्समस्त मिति
पुरुषः पुरिशयनाद्वा पुरुषः सोऽहमस्मि भवामि १६ । १ ।

टिप्पणम् व्या हृतीतिन्यस्य भूरितिशिरः भुव इति बाहुः



भट्टभास्कर के मतमें अर्थहै किजो वह हरिहै भिन्नाभिन्न हैवही तेरे में स्थित पुरुष है वही उस से भिन्ना भिन्न मैं हूं ११

निम्बादित्य के मतमें अर्थहै किजो यह विवर्त्त भिन्नाभिन्न हरिहै जैसा रस्सी में सर्पका निवास है वैसा परिपूर्ण मण्डल स्थतू भी है वही मैं भेद को विवर्त्त होने से हूं व्यवहार में तो परमार्थ सत्ता विवर्त्त मान भेद होने से विवर्त्त भिन्ना भिन्न मैं हूं १२

रामानुज के मतमें अर्थहै कि जो यह विशिष्ट द्वितीया चतुर्व्यूह नारायण है वही भिन्नों में भी तुम मण्डलस्थ पुरुष हो उस से विशिष्टा द्वितीय वही तुम और वही विशिष्टा द्वितीय मैं हूं १३

वल्लभ मतमें अर्थहै किजो यहचिद्रूप हरिहै वहीतुमपुरुष होवही शुद्धा द्वितीय कृष्णशरण ब्रह्म संबन्ध होनेसे मैं भी हूं ।

इनके मतमें अर्थहै किशुद्धा द्वितीयकेविशेषण हरि सूर्यगुण केभी होने से यहां भी होसकता है उसके संबोधन से होगा सर्व सूर्य तुल्य कृष्ण रूप के निकट होने से आवर करश्मिओं हटा कर दिखाओ मेरा अज्ञान दूर करो शुद्धा द्वितीय पुरुष स्त्री रूपों से गोपों की तरह राधा वल्लभ बन कर पुष्टि २ भक्ति दान से ऐसे कृष्ण रूप दिखाओ १४

सुवरिति प्रतिष्ठेति श्रुतावारोपित देहाकारोवा देहादिप्राकृतन सृष्टि कालिको देवाकारोवाध्याहृति रङ्गन्यासादिवत् कल्पिता कारोवेतिध्येयम् १२

वे० विज्ञान भिक्षु मते योसौ परमात्मा असौपुरुषः सर्व व्यापकत्वात्परि पूर्णःस्वतन्त्रो ऽपि सएवतद्दिव भवामि मुक्ति कालिकस्तदाहिममापि तस्य दृश्यमेवं निर्दोषं रूप मिति लेटा आत्मनोनित्यत्वाद्वा भूतादि काला विवक्षया भवामी तिव्यपदेश इतिध्येयम् १३

माध्वमते योऽसौपुरुषोगुःकर्म कृद्वै दिकस्मार्तो हरि भक्ति दीक्षि तोसौ सोहमस्मि परमभागवतस्यतेसमानदीक्षितइतिमत्तवोपर्य भिमान इत्यर्थः यद्वायोऽसौ हरि रसौ पुरुष स्वतन्त्रः सोहंन स्वतन्त्रस्तदीयत्वान्न दीयत्वे दृढ भक्त्यास्वं ठयत्वान्ममात्मैवसोह मित्य भेदभावना माहश्रुति रिति ध्येयम् १४

भट्ट भास्कर मते योऽसौहरि भिन्ना भिन्न स्सोसौरवस्थ पुरुषःसोहंतद्भिन्ना भिन्नोहमस्मि इत्यर्थः १५

निम्बादित्य मते योसौविवर्त्तं भिन्ना भिन्नोहरिः भुजङ्गो

नकुलीश पाशुपत और शैव मत में इस का अर्थ यह है कि जो यह जीव पशु पुरुष वह सत्कर्म करनेसे वही वैदिकस्मार्त पशुपति दीक्षित हुआ वही हम हैं तुम भी उसी स्वामी के अधीन हो मुझे भी उसी स्वामी के परायण तुम जानते हो वही हूं १५

माहेश्वर मत में अर्थ है कि जो यह जीव पशु है वही मैं पाशरहित होने से सदा शिव हूं वही मैं यहां वहां भक्ति प्रभाव से उसीरूप तेरी सहायता से अपने किये वैदिक स्मार्त्त शुभकर्म के योग्य हूं १६

स्तु मात्रनिवासोऽसौ पुरुषोभगवान्परि पूर्णो मण्डलस्थः सोऽहम स्मि भेदस्य त्रिसत्वं स्वात्स्वएव व्यवहारेतु परमार्थ स्त्यैवावि- वर्तमान भेदक स्वाद्वित्वे भिन्ना भिन्नस्सोऽहम स्मि इत्यर्थः १६

रामानुज मते योसौविशिष्टाद्वितीय चतुर्व्यूहनारायणःसो सौभिन्नोपि भगवान् पुरुषो मण्डलस्थ स्तेन विशिष्टा द्वितीयए वाहमस्मि इत्यर्थः १७

वल्लभ मते योऽसौचिद्रूपो हरि स्सौभगवान् पुरुषःतच्छुद्धाद्वि तीयोऽहंचतथा कृष्ण शरणतयाकृत ब्रह्म संबन्धस्तच्छुद्धाद्वितीय तदात्मएवास्मि इत्यर्थः

एतन्मते शुद्धा द्वितीयतया सर्व विशेषणामि सूर्यस्य इति शुद्धाद्वितीय गोस्वामिगुरोरिहि ब्लोकेतच्छुद्धाद्वितीयतयासुपपद्य मानानिभवन्ति इति तत्संबोधनेनतत्पूर्थतयातदीय शुद्धाद्वितीय रासस्थ कृष्ण रूपस्य निष्पदतया स्वमीनावारकान स्वात्स्थेत्यर्थेन व्यूहाद्दर्शनमपि बोधित माध्रुपतं बसत्रति पार्थिवसमेन मवंण शुद्धाद्वितीयपुं स्त्री प्रकारैर्गोप्यादि वहू राधा वल्लभादि रूपतया पुष्टि पुष्टि लाभार्थेत्तिदिक् १८ १८

प्रत्यभिज्ञावादि शाम्भव मत में अर्थ है कि जो वह पहले देखा था पशु है वह फिर प्रत्यभिज्ञा से नित्य संविद्रूपचित शिव रूप स्पन्दात्मक उत्तम रूप से भैरव परि पूर्ण होनेसे पुरुष है वही मैं हूं प्रत्यभिज्ञा बल से भक्ति से दीक्षाराधनादि से परमेश्वर संपत्ति युक्त हूं १७

शाक्त मत में या उ ऐसे पहले छेद करने से अर्थ होताहै कि वह जो जगदम्बा गूढा गूढ लिङ्ग है जगत्के पैदा करने वालीपुत्र मेराआत्मा है ऐसी भावनासे वही प्रतीतदोविसवस से

नकुलीश पाशुपत मते योऽसौजीवः पशुःपुरुषोसौकर्मकृत्स्न था वैदिक स्मार्त्तः पशुपति दीक्षितः संपन्नः सोहमस्मिस्वसमिस स्तत्स्वरूपोमो आगामिस्वामि परायशंमानिति साक्षा देवंपशुपति रूपं दर्शन सहितं विसीषिकयासह पशुपति भक्तोस्मि निर्दिश तिथेद्यार्थः १९

माहेश्वर मते योसौजीवः पशुः सोहं पाशमुक्तः सदा शिव स्वरूपत्यापरि पूर्णं शिवात्म साक्षात्कारेण पुरुषः सोहं स्वभवित वैदिक स्मार्त्त कर्म फल भोग योग्यो भवामितादृशस्वतद्रात्मक स्वशातवसहायेसे ति ध्येयम् २०

प्रत्यभिज्ञा दार्शनिक मते योसौ प्राक् प्रत्यभिज्ञालोकः पशुःसोसौ प्रत्यभिज्ञयोत्तम शैरव भक्ति स्वच्छात्मतयाचमत नित्यसंविदात्म शक्ति शिवा भिन्नः परि पूर्णत्व पुरुषः सोहम तथाच्छात्मभवः सोहमस्मि परमात्म प्रत्यभिज्ञा वशयापरमेश्वर भवति भावः २१

शाक्त मते याव इतिविमर्शोसौ जगद्रूपा सैव गूढा गूढ लिङ्ग जगदुत्पादकत्वेनमातुःममपुत्रोयंममात्मेतिस्वरपुरुषः सोहंत

गूढा गूढ लिङ्ग अगूढ लिङ्ग पुरुष मैं हूं वही सा–त वो है वही गूढा लिङ्ग मैं हूं या अगूढ लिङ्ग उससे मेरी स्त्री है १८

साहित्य मतमें जो वह विभाव अनुभाव व्यभिचारि भाव के संयोगसे चर्वणामें आया हुआ सान्द्रानन्द सन्दोह देने वाला रस होता है वही बढे सत्व गुण वाला पुरुष वही मैं हूं ।

अथवा जो नाटकादि में राम कृष्ण अवतार रूप हुआ वही नर यह पुरुष है वही मैंने भी तादात्म्यसे अभ्यास किए, याने जो सूपरमात्मा लौकिक रस का अनुभव करता हुआभक्ति

मदीयात्मा प्रत्ररूपतया गूढ लिङ्गोऽ गूढालिङ्गश्च वाव इति त्रितकैऽहमस्मि इत्यर्थः २२

साहित्य मते योसौ विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगेनव्यर्थमाण सान्द्रानन्द निर्भरामोद सन्दोहोरसः सएवासौ पुरुषः समुद्रिक्तसत्वोत्कर्षाखण्ड सच्चिदानन्द स्वप्रकाशरूपः सोऽहमस्मि यद्वायएव नाटकादौ भवान् रामादिर्वा प्रतीनटः सोहं मयातादात्म्येनाध्यस्त इति त्वदीय लौकिक रसानुभूत पूर्वोहंत्वदात्मतया लौकिक रूपेण सएवाहम स्मीदानीं त्वत्समक्ष इति भावः २३

समीक्षक मते योसौप्राकृत सर्गादौ मातृ रूपः जगदम्बा असौ पुरुषःशिव विष्ण्वादि सूर्य गणप भैरवान्तागूढ लिङ्ग महा विद्या दशकात्म कोहिमकल समर्थासमर्थ स्त्रीसाधारणो गूढः पुरुष स्तदाकार मात्रः सोहं सूर्य भैरवात्मा गणप भैरवात्मा विष्णु नारायण हरि भैरवोत्मैं त्यादि शिव भैरवात्मातत्त्लोक देव सालोक्यादिना सकल द्विंभोगयोग्य इत्याहवेदःप्रार्थना प्रकारम् गूढा गूढ लिङ्ग विभेदेन स्वोचितशिवान्त लोकेतदीय वैभव विशिष्ट सायुज्यान्त मुक्तिं क्रम शोभुनक्ति तदीया गूढ

पूत हमें कर आया वही लौकिक भक्ति रस के अनुभव कर्ता मैं तेरे सामने हूं १९

समीक्षक मत में इस का अर्थ यह हुआ कि जो वह सम के आदि में जगदम्बा रूप है वही शिव विष्णु सूर्य गणपति भैरव रूप अगूढ लिङ्ग पुरुष है वही महा विद्या दश प्रकारकी गूढ पुरुष अगूढ लिङ्ग स्त्री है वहां प्रत्यभिज्ञा कर निर्विशेष शुद्धाद्वितीय जीव लोकमें और उस देवता के सामीप्यादि मुक्ति का अनुभव कर्ता उस के लोक में सब प्रकार संपद्व सुख का

लिङ्ग सालोक्य समीप्य सायुज्यान्ताक्रीडासारूप्यान्ताचमुक्तिः तदीय गूढ लिङ्ग रसालोक्य समीप्य सारूप्य सायुज्यान्तमुक्तिं लभन्ते भैरवा भैरव्यश्च सर्वं एवतयासह तदुत्तरंतद् द्वारा निर्विशेष ब्रह्म मात्रेलय स्वीकारादि हःपितत्क्रमेण भावी चित्या निर्विशेष हरि भैरव स्वानन्द नाथ कामे शोहमिति पदार्थकं प्रार्थित सूर्यो यम् गुरुतोऽपि प्रार्थयेत् सोहमिति लभेतचशाव मित्याह वेदो भगवान् २४

अनुभव कर्ता वही मैं हूं गुरुसे भी इसीतरह प्रार्थना होसकती है कि हे सूर्यसम प्रकाशक श्रीनाथ स्वामिन् जो वह पुरुष भैरव महा भिट्टादि भक्ति युक्त सर्व रूप सर्व देवोपासक सभ से प्रेम भाव रखने वाला सभ देवताओंके आनन्द का अनुभव कर्ता गुरुमन्त्र देवतात्मक भावनामात्र और निर्विशेष शुद्धाद्वितीय ही मिथ्या भेद वे विशिष्टा भेदसे भेदा भेद वे अभेद से शुद्धा द्वितीय धर्म ज्ञान वैराग्यैश्वर्य विशिष्ट सर्वात्मास्वयंप्रकाश शुद्धा द्वितीय परमात्मा पुरुष है वही शुद्धा द्वितीय मिथ्या और निर्विशेष होजाऊं कृपा से ऐसी भक्ति दीक्षा पादुका मन्त्र देवता मन्त्र सर्व विध पूजोपदेश देते हुए उस प्रत्यभिज्ञा वाला बनादो आपके उस उपदेश से वही प्रत्यभिज्ञावान्मैं हूं यहां भी और मरकर भी २०



वायुरनिलममृत मथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ऊँक्रतोस्मरकृतं स्मरक्रतो स्मरकृतंस्मर ॥ १७ ॥

वायुरिति

मन्त्रद्वयस्य शाङ्कर तुल्यार्थे स्वीकारेऽपि बाधका भावात्कथा चिद्धि मत भेदेऽपि विवाद प्रयोजक हेतोर भावात्तदर्थः प्रथमं लिख्यते विशेष स्थल वाक्यं निवेदयिष्यते ।

शा० वायु रितिमम मरिष्यतो वायुः प्राणोऽध्यात्म परिच्छेदं हित्वाऽधि दैवतात्मानं सर्वात्मक मनिलममृत—सूत्रात्मानं प्रतिपद्यताम् इति वाक्य शेषः लिङ्गं चेदं ज्ञान कर्मसंस्कृत मुत्क्राम

इस और आगे के मन्त्र में शङ्कराचार्य के अर्थ में भी मरने वक्त विरोध किसी का लग्वा नहीं पहुंचाहै इस से वह पहले लिख कर कुछ और आगे चमत्कार अर्थान्तर लिखा जावेगा वह अर्थ है कि जब मैं मरूंगा तो प्राण मेरा सूत्रात्मा प्राण में मिले और लिङ्ग ज्ञान संस्कृत और कर्म संस्कृत(भक्तिवादिओं का जिस देवता में भाव है उसे उस के पास) होकर ऊपर के लोगों में जाए शरीर तो अग्नि में पड़ेगा और भस्म होगा ओं इस प्रतीक की मूर्तिपूजा की तरह ब्रह्म व परमात्मा व अपना २ देव) स्वरूप जो मैंने स्मरण करना है(भक्तिवादिओं को अपना देव व उस से लेने लायक फल) को और पीछे जो किया वह स्मरण कर उसकी तरक्की के लिये (भक्तिवादिओं की अपनी महनत पीछे फल के लिये और अगर मेरे कर्म योगिओं के घर जन्म हुआ तो उस से तरक्की के लिये) स्मरण कर ।

त्विति शिष्टं व्यम् मार्गं य धन सामर्थ्यात् अथेदं शरीरं भस्मीभूतं भस्मान्तं भूयात् ओ मिति यथो पासकस्मरणीकाले कतवान्स्वयं स्मर कर्मव्याख्यं ब्रह्माभेदेनोच्यते हे क्रतो संकल्पात्मक स्मर यत्त्व मस्मत्स्वत्वं तस्य कालोयं प्रत्युपेतोऽतः स्मरैसावन्तं काल भावि त कृतमग्ने स्मर यत्त्वया बाल्य प्रभृत्यनुष्ठितं कर्मतत्त्वस्मर क्रतो स्मर कृतं स्मरेति पुनर्वचनमा दरार्थम्

टी० अध्यात्म परिच्छेद हेतुदेह स्था स्मनः प्रार्थनाभिदंमन्त्र

दयानन्द मत में सूक्ष्म दशा सूक्ष्म तर इत्यादि भाव ही लिङ्ग शरीर का यही अर्थ है।

सभी—ठीकहै बगैर इसकेओर दयानन्दि सरककीकैसेहोगी कैसे पिण्ड दान बिना दूसरेके मगजमें बिदूसमीपअस्थिओरध्या में लिखी दयानन्द ने ऐसे कैसे पावेंगे।

स० समीक्षक अतने मत में जीते हुए भस्मादि धारणादि भी मानकर प्राण से परमात्मा को मिला कर प्राणायामादि सूर्य शिव भैरवादि मूर्ति लिङ्गादि से संपद्द पूर्व कोप भोग लेता भक्ति वृद्धि करता है आगेभी वैसा संकल्प प्रार्थना करनाकभी निर्विशेष धर्मादि सत्कर्म होने पर होगा नहीं तो भक्ति से म निरकर यही निर्विशेष शुद्धा द्वितीय सकल देव संपत् लाभकरता और करेगा।

शाङ्कर मतीय कई एक प्रकृति विशिष्ट इसपद से हिरण्य गर्भ शुद्धजीव भी लेते हैं।

भस्मान्त पद से भस्म समीप याने अग्नि होत्रादि की भस्म के त्रिपुण्ड्रादि धारण करना जीतेजी शैवत्रय और समीक्षक मत में भी वैष्णवाति रिक्त और दयानन्दा तिरिक्त के अर्थ में

दीय भेदतन्निष्ठ पूति योनि त्वानु योगित्वे इत्यर्थः सूत्रात्मान मिति अनुस्यूतत्वात्सूत्रवदास्तिक सिद्धान्तेसत्त स्वीयाभीष्टदेव ता [illegible]षात्मान मित्यर्थः दयानन्द मते सूक्ष्म रूपं प्रतिपद्यतामि त्यर्थः समीक्षक मते सूर्यादि शिव भैरवान्त गूढ लिङ्ग नाल सनी पादि मुक्तावस्थीय सुखोपभोगेनान्ते मातृसायुज्येन मुक्तिं पर माविन्मात्राम् इत्यर्थः शङ्करमतीयास्तु प्रकृति विशिष्ट रूप मित्यर्थेन हिरण्यगर्भ रूप बृहज्जीवतयाऽभि प्रयन्ति भस्मान्त मिति जीवतो भस्मादि धारणं भस्मनतित्यक्त देहस्यतद् वधान स्वात् तत्र शैवानां केचन कापलिका भस्म रूपेण तदपि महा देव लिङ्गो परि अधिरूढमित्यर्थमभि प्रयान्ति अन्ये पुन भूतानुचरा भस्म रूपेण भूतादि स्वरूपान्तं भूतसंनिहितमप्याहुः

भी होसकता है कई एक भूतोपासक भस्म हुए भूतों के समीप भूतनाथ होना भी कह सकते हैं

हरि भक्ति वादि वैष्णव सभी मत में भी गङ्गाजल में पहले से पवित्र भस्म रूप देह हरि के पाओं में गिरने से उस के पास शरीर होगा यह अर्थ भी करसकते हैं ।

समीक्षक भस्मादि धारण पूर्वक सर्वदेव पूजा भी अर्थ कर सकता है और भस्म जब होगा तब भी देह त्याग के बाद उस देह से मेरा संसर्ग नही मैं तो सर्वात्मा सभी बन सकता सभ आनन्द का अनुभव करसकता लीला देहो से वर्तमान देहों से सन्तता भाव से जन्मान्तर से सभी प्रकार से निर्विशेष शुद्धा द्वितीयहुआ अपने यश स्मरण करता बढाता सुखोपभोग करता भक्ति पुष्टि भक्तिको प्राप्त करताहै परम मुक्ति भी निर्विशेष होजाने के वक्त आने पर हो सकती है

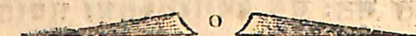
हरि भक्तिवादिनः गङ्गा जलपात पावितनिज स्वरूपं भस्म रूपेण हरि पाद पतितं स्यादित्याहुः समीक्षकः पुनर्भस्म पर्यन्त मेवनदितित्यक्तेनसमंदेहेननममदानीं सकृशन्धोमात्रादिस्व स्थादिरूपोऽपितुसाधारणत्वेनसर्वात्माहमेवनिर्विशेषशुद्धाद्वितीयः सोहं सर्वरूपोममैव सर्वमिद मितिभावान्मरणान्ते प्राप्यैस्तैरूप भोगैः सर्वदेव समादि भिरानन्द मन् भवन् मुच्यते जीवन्नपिदेह तत्वदृष्ट्य भाव प्रत्यभिज्ञा दार्ढ्येन शास्त्रतोनिर्वृणः स्वयन्नसंस्मर तिमन्त्रैर्निष्पादयतीति मृतः सूर्य समादितस्तथा भवति इत्याह ।



अग्नेनयसुपथरायेऽस्मा न्विश्वानिदेववयुनानिविद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठांते नमउक्तिंविधेम ॥
१८

अग्ने स्तुति-

भक्तिवादिनां मृतस्यतदग्नि प्रार्थना लोकेषु देवेषुनिजेषु प्राप्तये शोभन मार्गेऽस्माकस्वत्वेन धनः रूपेनय सर्वाणि देव प्राप्ता निज्ञानस्वरूपंमद्रूहे पिशु पापिन पापसंघा युद्धे नचारय भूयोर नम स्कृतिंतकुर्म द्वलिजोवितरथय शत्रूणा पापस्य चात्म देहवाक्कृत स्यनाशाय स्वस्वदेव प्राप्यफलाय सुमार्गस्य पद्धति सदाचार धना



भक्तिवादिओं के मत में अगर मरेगा तो उस को अग्निके आगे भी प्रार्थना करनी होगी सो लिखते हैं कि अपने२ देवताओं के लोको में प्राप्ति के लिये शोभन मार्ग जो हमारा स्वत्व होने से धन है वहां पहुंचाओ सब देवताओं से मिलने वाले सब पदार्थ को तू जानता है तू हमारे शत्रु व शत्रु रूप पाप को युद्ध से हटा अब तो और पूजा सामग्री नहीं हमारे पास खाली नमस्कार छोड़ते हैं जीते हुए भी अपने शत्रु और पाप देहवाणी से किये को हटाने के लिये प्रार्थना होता है होमाग्नि नित्यनैमित्तिक के पास अपने देवों से फल मांगने के लिये सुमार्ग सदाचारधनादि वृद्धि के लिये और मत वालों को भी जीते नित्याग्नि होत्र (अपने मतके अनुसार दयानन्द को भी हो सकती है मगर अधिकार नहीं यह आगे कहा जायगा) केआगे प्रार्थना भी होसकती है ।

दयानन्द के मत में विद्वान् ही तो देवता होते हैं इस से मन को तर्क रखकर अर्थ तो होसकता है शत्रु निवारण प्रार्थना

ऐश्वर्य वृद्धि प्रार्थनानित्यादि होमाऽन्वयेत्यर्थः मतान्तराणां नवि
सिन्धाग्निहोत्रऽन्वयेतथाप्रार्थना मरणान्ते तद्वनधेश्वरस्मात्माद्रि
प्राचतयेव प्रार्थनासुमार्गेगरवामद्रिफलोप भोगे प्रार्थनामुक्त्यर्थम्

इत्याकम्य मते देवा विद्वांसः मतान्तरीयाणां सिद्धार्थः मंपाद
यितुं शक्यते शत्रु निवारण प्रार्थना लिङ्कत्तम् वायु शुद्धयर्थस्था
होमस्यापि नियोगस्तु स्वकृत एवनस्व प्रमाणम्

समीक्षानाहय विनियोजकस्य सामर्थ्याभाव हुवा विद्वां
सोदेवा इत्यस्यार्थकरण द्वारा प्रानुक्त होमादिअन्तःपूरुष

नहीं होसकती क्यों कि वह तो दरअसलमें होम का फल मुता-
बिक साइंस के वायु शुद्धि करते हैं इससे उनको शत्रुभाव रखना
किसी से अच्छा नहीं वह सब को वैदिक झण्डे के नीचे लाना
अच्छा समझते हैं ॥

इस की समीक्षा सनातन मजहब के संकेत वालों की तर्फ
से यह है कि विनियोग की सामर्थ्य किसी महर्षि ने तो पदवी
देके उन को न की ३६ वर्ष की आयु के मत को देव मिल नहीं
सकते थे क्योंकि कलौ दश सहस्राणि विष्णुस्तिष्ठति मेदिनी
तदर्धं जाह्नवीतोयं तदर्धं ग्रामदेवताः याने दश हजार वर्ष तक
विष्णु यहनामरहताहै गङ्गामाहात्म्यपांचहजार वर्षतक (यहतो
दरअसलमें ५४मेकलिमें कहाहै यहअद्भुत मोमामा करनेसेमिलता
है गङ्गाका माहात्म्य रहताहै २५ सौ वर्ष तक ग्राम देवता रहते
हैं अपनी २ सन्निधि रखते हैं क्योंकि २६ सौ वर्ष के करीब से
बुद्ध मजहब प्रचार से नास्तिकता बढ जानेसे ग्राम में भी देवता
प्रधान भूतों पर भी विश्वास नहीं रहा वह खुद भी लोगों को
ज्यादह शास्त्र विरुद्ध आलस्य युक्त देखकर अपना पीछा छुड़ाने

कलधर्मस्यवोछेदोनियोगोईश्वरनिन्दा चैतन्मतेसकलवेदादिविरोधि लयावगं शत्रुता दोषादिर्नहानिति पूर्वमावेदिता शत्रु निवारण प्रार्थनाऽशक्तिरमधिकारस्त स्यानिष्फलत्वंच मन्त्राणां विरुलत्व रूपरवक्रिया विरुद्धमतः सिद्धान्त हान्यादि दोषाश्चेतिदिक्

शा० पुनरन्येन मन्त्रेण मार्गं याचते अग्नेनयेति हेऽग्नेय गमय सुधाशोभन मार्गेणसुपथेति विशेषणं दक्षिण मार्गनिवृत्यर्थं निर्विण्णोहंदक्षिणेनमार्गेणगतागतलक्षणेनातीयाचामित्वांपुनर्गम नागमन अर्जितेन शोभनेनपथानय रायेधनाय कर्म फल भोगाये

के लिये नास्तिक बन बैठे भक्तों का मालिक बिन विश्वास भी कौन कराये तो इस बिचारे बाबाजी को विद्यार्थि हालत से विद्वानों से कुछ ज्ञान मिलने से बगैर उनके देवता कौन मिलता मन्त्रार्थ तो देवता विद्वान् होते हीहैं यह कह ही चुकेहैं होमादि का ऐहिक फलकेही साइस दानों को अपने पीछे लगानेके लिये मानने से हेतुदर्शनाच्च इस जैमिनि सूत्र। २।३। के अनुसार फिर जन्मान्तर में किसी धर्म के नहोने से सुख फल देने को न्याय मुताबिक कर्म मिलना मुश्किल है परलोक तो मानना ही नहीं।

नियोग देव निन्दा मूर्तिपूजा खण्डन व सनातन संकेत विरोध से उन को शत्रु बनाकर जैन निन्दा कबीर निन्दा बौद्ध निन्दा दादू राम स्नेही गोकुलिया रामानन्दि स्वामी नारायण आदिकी निन्दा मुसलमान,ईसाई(अंग्रेज)निन्दा से सभ को शत्रु बनाकर भी शत्रु हमारा कोई नहीं इस पुलिटिकल विद्या से मैं समझताहूं कि इधार छपा सत्यार्थ प्रकाश पृष्ट १४१ में सबसेनाओर सेनापतिओंके ऊपर राज्याधिकार दण्ड देनेकी व्यवस्थाके कार्यो का आधिपत्य और सबके ऊपरवर्त्तमानसर्वाधीशराज्याधि कारी

त्यर्थः अस्मान्यथोक्त धर्मफल विशिष्टान् विश्वाणि सर्वाणि हे देव वयुनानि कर्माणि प्रज्ञानानिवा विद्वाञ्जानन् किंच युयोधि वियोजय विनाशयास्मदस्मत्तो जुहुराणं कुटिलंवञ्चनात्मकमेनःपापं ततो वयं विशुद्धाः सन्त इष्टं प्राप्स्याम इत्यभिप्रायः किन्तुवयमिदानीं तेनशक्नुमः परिचर्यां कर्तुं भूयिष्टांबहुतरांतेतुभ्यंनमउक्तिं नमस्कार वचनं विधेमनमस्कारेण परिचरेमेत्यर्थः अविद्ययामृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते विनाशेनतीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुत इतिश्रुतवाक्येचित्संशयंकुर्वन्तिअतस्तन्निराकरणाय संक्षेपतो विचा



इन चारों अधिकारों में संपूर्ण वेदशास्त्रों में प्रवीण पूर्णविद्या वाले धर्मात्मा जितेन्द्रियसुशील जनों को स्थापित करना चाहिये अर्थात् मुख्य सेनापति मुख्य राज्याधिकारी मुख्य न्यायाधीश प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान् होने चाहियें इबारत लिख कर (परमात्म मतावलम्बी अपने को ही मानने वाले दयानन्द को जो आज तक छपता ही चला आया कि १७६पृ० हमपरमेश्वर की पूजा औरपरमात्मा हमारा राजाहम उस के किंकर भृत्यवत् हैं वह कृपा करके अपनी सृष्टि से हम को राज्याधिकारी करें ऐसा इबारत लिखने से दयानन्द राज प्रजोपद्रव फैलाने को भेष बदला किसी राजाका दूत नहो नहीं तोमतमात्र निन्दनकरमूर्ख पोपकहकरसनातन आदिमतकोअपने हीकोपण्डितबनाने वालेका अपने आपराज्य करने का अख्तियार लेने का मनोरथ कलमसे लिखकर दिखाना कैसे होगा।

मन्त्र सभा का भी तो पुलिटकिल विद्या में निषेधही कर चुका मन्त्र समीक्षार्थ तो यहहै कि अग्ने इन को लेजा सुमार्ग में समझा दे रास्ता राजोपद्रव दल से हटने का अस्मान् हमारे

स्तां करिष्यामः (समस्तावशिष्टं निभिन्नः संध्व वायुष्वनं विद्या शब्देन बुद्ध्या परमात्म विद्यैव कस्मान्न गृह्यतेऽमृतत्वं च नङ्कर्ता ताः परमात्मविद्यायाः कर्मणश्च विरोधात्स मुच्चयानुपपत्तेः सत्यं विरोधस्तु नावगम्यते विरोधाविरोधयोः शास्त्र प्रमाणकत्वात्तथा अविद्यानुष्ठानं विद्योपासनं च शास्त्र प्रमाणकं तथा तद्विरोधा ऽविरोधावपि यथा च न हिंस्यात्सर्वा भूतानि इतिशास्त्रादवगतं पुनः शास्त्रेणैव बाध्यते ऽध्वरे पशुं हिंस्यादिति ।

एवं विद्या विद्ययोरपि स्यात विद्या कर्मणोश्च समुच्चयेन दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति श्रुतेः विदुषां

धन याने हमारी सुशान्ति फैलाने व ली राजानुकुल पूजा के स्वत्व के बढाने के लिये तुम सब जानते हो याने इन के भीतर के पाप का जान कर भी इस के सुमति देनेका तरीका जानते हो इन के भीतर के इस पाप का दूरकरो तुम्हे नमस्कार करते २ थकगये ।
अब तो मान अब उस से भी ज्यादह नमस्कार कर रहे हैं हम तो निर्द्वन्द्व निर्बल और अल्प संबन्धि हैं तेरी भेट पूजा में हमारी सामर्थ नही कृपा करो ।

शङ्कराचार्य के मत में अर्थ है कि तुम हमे शोभनमार्ग से लेजाओ दक्षिण मार्ग में तो गमना गमन भूख पिआस से हम खिन्न होगये भूख पियास हटाने वाले धर्म फल भोगके लिये तो सब देवताओं के कर्म व ज्ञान को जानने वाले हो हम से पाप दूर करो तब शुद्ध होकर हम इष्ट लाभ करेंगे अब हम तुम्हारी भेट पूजा नही करसकते नमस्कार ही करते ज्ञानकर्म का भिन्नाधिकरण होने से मुक्ति के लिये समुच्चय नही यह ठीक

चाविद्यायैवेतिप्रमाद् विरोध इतिचेन्न हेतु स्वरूप फलविरोधात्
विद्या विद्यया विरोध विरोधयोर्वि [illegible] [illegible]
नाद् विरोध एवेतिचेन्न असम्भवानुपपत्तेः [illegible] [illegible]
विद्या विद्ये इति यत्र विद्यायोरप्यताव विद्यायाः [illegible]
येऽविद्यानुपपत्तेः [illegible] प्रकाशयति [illegible]
[illegible] अविद्या
[illegible] [illegible] भूतान्यात्मैवाभू
द्विजानतः । तत्र को मोहः क शोक एकत्व मनुपश्यत इति शोक

है अगर देवता ज्ञान सत्कर्म तो शास्त्र में इकठे करके लिखे हैं तो
शास्त्रप्रमाण के अनुसार इनका विरोध नहीं मुक्ति हेतु ज्ञान है कर्म
ज्ञान के हेतु फल का मुक्ति हेतुस्वरूप से विरोध है इसवास्ते ज्ञानकर्म का
समुच्चय नहीं यह तो पहले ही कः शोकः तक ही सूचन हुआ
याने मुक्ति कारण नहीं सत्कर्म तो छोड़ने नहीं चाहियें।

कर्मीसक मत में इस मन्त्र का अर्थ यह है कि मरण के
अगर होगा तो उस के बाद सब देवताओं के मुख दिखाने के
लिये सब जगह प्राप्त कर उन से अपनी भक्ति का फल देने
के लिये हमारे पाप दूर करो जिस तरह से होसके जैसे भी
प्रत्यभिज्ञा से निर्विशेष शुद्ध द्वितीय भक्ति का फल दे ऐसी
प्रार्थना होसकती है।

और यहभी अर्थ होगा कि राजा प्रजाकी शान्ति आनन्द
राजा प्रजा की सब तरह की उन्नति के लिये शोभन मार्ग बता
इसके प्रतिपक्ष को भी यहीभाव दिखाकर इसका फल यहां राजाप्रजा
की नौकरीके स्वस्थ फल देने के लिये तू सब देवता का रक्षक
बेता है सर्वदेवोपासक कुछ शास्त्रमत और प्रगट तो कर्मीसक मत

मोहाद्रय संभव श्रुतेः अविद्रया--
संभवात्तदुपादानस्य कर्मणोप्य नुपपत्तिमवोचाम अमृतमश्नुत
इत्यापेक्षिकम मतं विद्रया शब्देन परमात्म विद्यायहणे हिरण्म
येनेत्यादिना द्वारमार्गादियाचन मनुपपन्नंस्यात्तस्मादुपासनयासमु
च्चयेन परमात्म विज्ञानेन यथाऽस्माभि र्व्याख्यातमेव मन्त्राणा
मर्थइत्युपरम्यते।

टी० अत्रसमुच्चयानुपपत्तिरिति मुक्तिसहत्वत्यक्च्छेदेनद्वितम
विशिष्ट ज्ञान वैशिष्ट्यं मकर्मण इत्यर्थः

हो निर्विशेष शुद्धा द्वितीय है हमारे पाप फिर भी अगर हैं तो
दूर करो धन दौलत द्रव्य कोई हमारे पास नहीं सब के प्रेम
बढाने वालों का भी नया समझ सहाय नहीं देता लोकोर्ध बल
भी नहीं नमस्तेस्तु भगवन्नूता नहीलोहकर सकते हैं।

अब महाशय नमस्ते बाचनी !

बस यह उपनिषत समाप्ति को प्राप्त हुआ कैवल्योप
निषत् मुताबिक इस के आद्यन्त में-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते ॐ शान्तिः३

यह शान्ति पाठ लिखा है।

वैशेषिक मतमें इसकाअर्थ यहहैकि यहजीव औरपरमात्मा
व्यापक है वह परमात्मा भी व्यापक है तो भी नित्येच्छादि
अधिक गुण होने पर भक्ति अब स्थान में भी इस की पूर्णता

वै० स्वाश्रयाश्रित प्रयत्न. जन्यत्व स्वावच्छेदक लग्ना वच्छिन्न त्वत्वा वच्छेदक शरीराश्रितत्व संसर्गद्वयेन आश्रित त्व [illegible] ताद्दारक्ष्येन भुक्तिज्ञानयोश्च स्वाश्रित्व त्वेनच प्रयोजक त्वं स्वाश्रिता भाव प्रतियोग्यज्ञान नाशत्वा [illegible] तिनर्पोसता-द्दारक्ष्येन स्वासन्नरूपा कारण त्व स्वीकारे प्रयत्नस्य वैयधिकारण्यं च तद्द्वारक कर्म ऽपि तथा त्वप्रयोजक प्रयत्नावच्छेदक त्वेन प्रयत्नस्य तद्द्वारा कर्मणश्च नहेतुता तादृश संसर्गे नहेतुतावा भावा भावात् स्वविरोधि त्वेनोपजीव्य विरोधात्तन्नाव्यः यथा

जीव के साथ होते भी द्वित्व होनेपर भी पूर्ण परमात्मा अधिक ही है और तार्किक मत में भी यही अर्थ है परन्तु परमात्मा, जीव भिन्नेव ही है। सांख्य मत में अर्थ है कि परमात्मा प्रकृति और जीव तत्व दोनों व्यापक हैं परन्तु प्रकृति में व्यापक यह है कि जीव को बद्ध कर देतीसी है यही उसका आदान है कि प्रति बिम्ब चित का छाया धर्मारोप लकर भरती के लिये पूर्ण रहती है अथवा बन्ध समय प्रति बिम्ब लेकर मुक्ति समय में पूर्णता को आपादन कर अपना पूर्णरूप दिखा फिर उसके रूप दिखाने से भिन्ना अयुतत्व पृथक् बन जाती है नाटक करने से यान भिर जन्म को न ग्रहण कराती मुक्ति से पुनरा वृत्ति नहीं होती विज्ञान भिक्षु सांख्य के मत में धर्म धर्म्यारोप प्रति बिम्ब आदान पदार्थ है और वेदान्त विज्ञान भिक्षु को परि [illegible] समझता है वही एकसाहीआदान पदार्थ है॥

वैष्णव संप्रदाय के अणु जीव भी धर्म ज्ञान रूप प्रभाद्वारा सर्व शरीर व्यापक है परमात्मा का अंश सायुज्य होने से या अंश ही और उसी की कृपा से कृत कृत्य होवे

चिद्गतेऽप्यनाद्येऽपि यावत विरोधः सत्कारणक ध्वंसत्वप्रयत्नकार्यता
वच्छेदक त्वेनकारणस्य पूर्वेन्नानौचित्यं चे त्परमात्मा अनन्त
तावच्छेदकत्वसाक्षाद्धेतुकत्वयोरवच्छेदक त्वाननुगमेनसंसर्गाननुगमे
न चोभय त्वादेः प च्छेदक त्व विशेषस्य पूर्त्वकाननुगम
द्वारका न नुगमेन च स्वीकारानुग्राहका भावेन च मुक्तीतर
भेदानुमापक हेतौ विशेषण वैयर्थ्येन व्यापकत्वासिध्द्या च
स्वीकारो नो चित्या इति दिक् शास्त्र प्रमाणक त्वात मुक्ति
प्रयोजक त्वे तद् विशेषेऽपि भोगहेतुतायां कर्मणोमा नयविरोधः

यदि पूर्णता इसी परन्तु उस का ऐश्वर्य होने से और वास्तवि
वैश्वर्याधिक्यसे व्यापक होने से वह सर्वथाधिक है इसी से
उसे मुक्ति देने से वह साध्य मत में इसहदा बन जाता, औरों
के मत में वही रह जाता है यह अर्थ है। भेदवादियों के
मत में तार्किक तुल्य पहला अर्थ है परन्तु पूर्ण प्रह्लादादी
भगवद्भक्ति से कृत कृत्य परि पूर्ण होना जीव का यह अर्थ
विशेष है और भेदाभेदवादियों का तो यही अर्थ है
जो भेदा भेदादि वादि वैष्णवों का है परन्तु दोनों अन्तर
भक्ति का भेद है उपाधि की अपेक्षा भेदवास्तवि का भेदन
मृद्घटादि परस्पर भेदवत् आंशिक भेद और वास्तवि का भेद
भेदाभेद मत में माना जाता है!

शुद्धाद्वैत मत अर्थ है कि ब्रह्म संबन्ध से कृत कृत्य भी
जीव पूर्ण परमात्मा अधिक है उस से शुद्धाभिन्न भी है परन्तु
उस की कृपा से ऐश्वर्यसंपन्न है आखिर सेव ही व्यापक सायुज्य
में रहना है। दयानन्द मत में करीबन विज्ञान भिक्षु के अर्थ हो
सकता है परन्तु परिच्छिन्न त्व प्रतिबिम्ब न मानने मात्र में नहीं

निरुपाधि स्व स्वरूपत्वमाधे पूर्णिमो ग्यन्तः करणत्वादिनाहेतुना ऽस्त्येव सुखात्मा चिन्मयस्तु भूमिरूपभोगे तादात्म्येनेतिभावः। तद्देवोऽभयवस्य नष्टत्वगूहे तुल्यरूपत्वविरोधा दित्यादिनेतिदिक्

शाक्तमते मरणान्तेषु यथा उद्दिश्यपरं पीति सुखात्मनय यथा अनेसर्व देवलोकान् स्वधनस्य तत्संपदोऽलाभाय चिन्ताभिजानन् शत्रुं वा अस्मान्नय तस्माद्धनात्स्व व्याहरणाय शत्रु वा रक्षेत प्रतिबन्धनिवृत्या कार्य सिद्धेरनुकूलता संपत्तेः अभ्युनु पुराणमेनः पापं युयोधि दूरीकुरु अस्मत्कर्म समीक्षया स्वानु विधृ

आता नवीन वेदान्ति खण्डन की समीक्षा चक्कर खिला देती है अगर यह मान ही लें लकीर के तो फकीर नहीं बनना चाहें तो इतोभ्रष्ट स्ततो भ्रष्टः भी सही परन्तु फिर तो उपाधि की अनित्यता से अनित्यता आजायगी और अद्वैत श्रुति बाध भी आ जायगा इत्यादि पहले भी लिख चुके हैं।

भास्करा चार्य के मत में जीव चिद्रूप से पूर्ण है अथवा एक जीव व्यापकोपाधि है परमात्मा भी व्यापक है परन्तु अधिक है उसकी उपाधि हटाने में पूर्णता अपनी आप में लेकर स्वयं ब्रह्म मात्र बन जाता है नित्य मुक्ति धाम से लेकर परम मुक्ति तक भास्कर मत में यह भूलोक और यह स्वर्ग लोक जीव से व्याप्त ही है परन्तु पुण्य जीवकाय आदि कर्म से पैदा हुए अदृष्ट को साथ लेकर मन की बहिर्गति से यहां स्थित देहादि से बड़ा व्यापक है वही पीछे या वस्तुस्थिति वस्तुतः का मोक्ष रूप रहता है।

शाक्त का मत भेदवादि के तुल्य ही है उस के मत में बल से बढ़की देवी है वही सब से बड़ी है।

क्षयप्राचश्चिन्नभागे कर्मभागगणनया च जीवतोऽपि प्रापयस्तकल कन्दद्दैवप्रत्यभिज्ञान साध्यं पद्वी द्वैतभागोणिऽहमत्र्यं नमस्तेऽस्तु भूयइतिभावः ।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते पूर्णस्यापूर्णमाद-यपूर्णमेवाव शिष्यत इम शान्ति मन्त्रमादावन्ते च पठन्ति के चन्योपनिषदितयोक्तेः कणाद् मतेऽशोजीवे नपूर्णत्वात्तं जगत्तपरेण च जीवापेक्षयातत्पूर्णं परमात्म तत्वमतिरिक्तंयतोऽस्य पूर्णतां-वहादाया विसत्यपिद्वित्व सांख्येन पूर्णमवशिष्यते संपदा च

———— :o: ————

शाण्डिल्य मत अर्थ है कि रस रूप से पूर्ण लौकिक है अलौकिक रस भी वही अखण्डानन्द चिन्मय है परन्तु यह लौकिक से अण्यद्द्रव्य समर्पित हरि कीर्तनादि में होने वाले अलौकिक अधिक ही है वही पुण्य का संपादक, और संपादित उसका है और अधिक ही रहता है करुणादि में रस में दुःख नही रहस्य लहरी सिद्धान्त समीक्षक मत में जीव का पूर्ण परमात्मा निर्विशेष रूपसे और मिथ्या भूत शुद्ध धर्मादि विशेषण विशिष्ट आरोपिता भेदेन शुद्धा द्वितीय भी बाधकमानाधि करण अशुद्धि आदि अंश स पृथगंश होने से अति रिक्त है इस जीवको शुद्धिद्वारा आत्माको शुद्धि द्वारा न्यूनता को पूर्ण करने विशेष शुद्धाद्वितीय और वही तो है हरिः सर्वं द्वन्द्वमयोऽहमेवाः इत्यादि समूहाल-म्बन प्रत्यभिज्ञा से क्रम २ दृढ़ता को संपद्का लाभ बाधकमानाधि करणेन क्रम २ से सायुज्यान्त करता हुआ जब मुक्ति संबंध होगा तो नित्य सिद्ध वही निर्विघ्न बाहुल्य ही होगा फलोपभोग से धर्मादि ज्ञान होंगे ॥

॥ शो शन्ति ॥

तमित्येवमादिनाएवमेव तार्किकमते गौतमेपरो जीवविशेषोऽपि जातस्तुपर भेदोऽनन्यार्थे साङ्ख्यस्य परमात्मा प्रकृतिरेव पूर्णतां जीवस्य गृही त्वा बहुत्वव्यवहारं धर्मारोपेण विधायप्रति बिम्बतया परिच्छिन्नतानयाद्येतिभावः विज्ञान भिक्षुमतेस्वयंपूर्ण आपूरक त्वार्थं बन्धसमये मुक्तिसमये पूर्णतामापाद्यस्वयंशिष्टा भेदेनावयुत्य केवलयद्दर्शक तथासान्निध्य प्रयोज्यधर्मारोपादि ना पुनर्बन्ध जनिकानेत्यर्थः माध्वादिवैष्णवा च मधुरपिजीवो धर्मज्ञान द्वारा व्यापकोदेहेपरिपूर्णः कृतकृत्यतयास्व स्वहरिभक्ति वशेनपरमहमादधिक एवासौ सायुज्यादिवादिनां तत्कालेऽपि वास्तविकाधि क्याद्व्यापकवा त्वाद्वा सोतिरिक्तोऽत्र तथा त्वं संपाद्यापिसर्वाधीशएवेत्यर्थः ।

शैवानां भेदवादिनां तार्किकाणा निवस्वदीक्षया कृतकृत्य तामित्यर्थं विशेषस्तदन्येषाम भेदवादिनां सोर्थः ।

भेदा भेदवादिनां भेदेनपूर्णत्वेऽपिभेदप्रवाहयवेत्यांऽशापे क्षया चेति भेदा भेदादिरप्यर्थः ।

शुद्धा भेदे तत्कृतब्रह्मसंबन्धेन कृतकृत्याऽपि जीवस्ततो सावधिकोपितेन शुद्धा भिन्नएवेत्यर्थः ।

दयानन्द मते विज्ञान भिक्षुवदर्थः कर्तुंशक्यते परन्तु परिच्छिन्नत्वस्य प्रतिबिम्बाद्यस्वीकारे तदीयव्याप्यत्वस्यायुक्तत्व प्राग्युक्ता न बिम्बतव्या शङ्करस्यमते जीवः पूर्णव्यापकोपाधि रेकोऽथवा जीवोविशेष्यापेक्षया पूर्णएवव्यापक त्वंगृहीत्व व्यवहारत्य मात्रं विधिव्यत इतरनिषेधेन नित्यमुक्तिभाव तत्प्राप्तौ च विद्वत्स्वयेत्यर्थः मीमांसाक स्वमतेदः एषामं मूलोक्त स्वर्गादिकं पूर्णं जीवनेन परन्तु पूर्णं जीवस्य पूर्णं संपूर्णंवादिन

वर्जिता पूर्णद्वारा मन सोऽनन्त्वात्मत्यदिव्यभोगी एवाव शिष्यते इत्यर्थः ।

शाक्तस्य शिवादिवत् वेदमर्यादिका मर्यादेत्यर्थः साहित्य मते रसात्मना पूर्णं लौकिक मलौकिक पूर्णतम परमरमाल्लौकिक रसदुरि |कीर्तमादिना धिकतयास्यवासना मत्स्यायमवशिष्य संपद्यते पुण्यलोकाय च पुण्यतमस्पर्शाश्च करुणादाशयि सुखमेवातिवाधः ।

समीक्षक मते पूर्णो जीवः पूर्णः परमात्मा निर्विशेषतया पृथगविवाच्य व्यवहारकर्मणि अणुत्वादि व्यापकोपाध्यपि व्यतिरिक्तः शुद्धा द्वितीयस्तस्मात् अस्य जीवस्य शुद्धिन्यूनता शुद्धधर्मवर्धितकमा पूर्णपूर्णप्रत्यभि जानन्तदे यद्यदा निर्विशेषोऽवाध वनामाधि करणएवावशिष्य निर्विशेषोऽवशिष्यते परम मुक्तावितस्वरूपार्थेत्यर्थः ।



परि शिष्टम्

इन मन्त्रों के इतने अर्थों के बगैर और कई एक मन्त्रार्थ हो सकते हैं हर एक मन्त्र में बीजों द्वारा भी हो सकता है पहले मन्त्र का नमूना अर्थ लिखते हैं:-

हे परमात्मन् त्वं ओकारेण सह अम् (ओम्) असि तथा ईशावास्ये कारणकाराभ्यां सहरेफेन सह्राम् (श्रीम्) असि तथा यत्किंचिज्जगत्यां संकेतितं जगत् तत्पदवाच्य (नमः) असि तेन (ओं श्रीं नमः) इति बीजमन्त्रेण स्य लक्ष्मी देवताकेन त्यक्तेनददातिप्रतिगृह्णतिमाऽस्यचेषाःप्रसिद्धयती तिसत्तत्वस्युक्तरी त्वात्वजय परमात्मना र्पितेनसता भुञ्जीथाःप्रापितमुपभोगंकुरु कस्यस्विद्धनं मागृधः स्वपरिश्रमसाधितं । दृष्टजन्मशोपभुञ्जयाः ।

भा०—हे परमात्मन् ओ के साथ अम् याने ओ३म् तू है और ईश के साथ रेफ सहित अम् याने श्री बीज भी तू है और जो जगत में जगत पद का संकेत है याने नमः बीज मन्त्र वह भी तू है इस (ओं श्री नमः) लक्ष्मी देवता के बीज मन्त्र को जपकर परमार्पित करने से पैदा हुआ धर्म रूप अदृष्ट अपने परिश्रम के फल उपभोग करो किसी के धन की ओर मत देखो जो करो सो भरो ।

इसी तरह हर एक मन्त्र से बीज निकालने वाला अर्थ भी होता है मगर वेद ने भी गुप्त किये मन्त्रों को प्रकट करना अच्छा न समझकर नहीं आगे लिखते ।

पीछे पहले कुछ मन्त्रों का सनातन तरफ की समीक्षा का अर्थ मन्त्र से निकाल लिखा छूट गया है वह भी लिखते हैं केवल भाषा ही में जैसे पहले मन्त्र का अक्षरार्थ है कि ईश परमात्मा ने अपनी माया से यह जगत ढका है और जगह श्रुति में लिखा है मायिनं तु महेश्वरम् माया वाला महेश्वर है इस से इसको माया में मूढ होकर अपने २ धनव समय वृथा न जाय, इस समयके लोभ में जीवव्यापकत्वपर लोको भाव दृष्टी नास्तिक मत देव विरुद्धो दिवि मुख हो बैठते है शास्त्र पढा सुना उस मोह को छोडकर शास्त्र मुताबिक पूजादि काम करो धन किसका है किसने साथ लेजाना है. जिसके लोभ में नास्तिक होते हो अथवा धन तो परमात्मा (क) का है और परमात्मा ईश ही जीव बनकर सभको व्याप्त कर रहा है सम व्यापकको व्याप्य देखना मोह लोभ छोडकरशास्त्रीय सत्क र्म में ही हृदय स्थापनकरो ऐसा वेद भगवान् अपने अक्षरों से ही सामान्य शब्दों द्वारा कह रहे हैं । १

दूसरे मन्त्र का अर्थ है कि दयानन्द मत खण्डन समीक्षा पूर्वक शास्त्रीय धर्म पूजा आदि कहने के पलाया करना आदि सत्कर्म करते हुए ही सैंकडों वर्ष जीने की इच्छा करे ऐसा शास्त्र विरुद्ध दयानन्दादि नास्तिक मत के ऊपर चलने में जो पाप होता है वह तुझे नही लगता शास्त्र में बताया कर्म पुण्य पैदा करता है उसस विरुद्ध कर्म पाप पैदा करता है इससे उलटा बिल कुल नही होता गीता में भी इसी नान्य देतोऽस्तिकी व्याख्या है तस्माच्छास्त्र प्रमाणं ते कार्या कार्य व्यवस्थितौ शास्त्र ही अच्छा (पुण्य) बुरा व (पाप) समझाने

वाला है वही यहां सामान्य शब्दों से वेद ने कहा २

तीसरे मन्त्र का दयानन्दमनोक्षार्थ यह है कि जो मुक्ति में निराकार से मिलना मानते हुए देह त्याग में विष्टा की हड्डी में चित लगाते हैं येयंयंभावंस्मरन्वा पित्यजत्यन्तेकलेवरम् । तंत मेवैतिकौन्तेयसदातद्भावभावितः । जो जो जिस जिस भाव को स्मरण करता मरता है वह उसी भाव के अक्स में आया उसी भाव को पाता है इस गीता के अनुसार क्रिटकृमि होनामञ्जूरकरते है शास्त्रीय देव भाव में मरने से लोगों की पूजा की मूर्तिओं में बैठना नामञ्जूर कर रहे हैं इस से मनुष्य को नीचे गिराने सेआत्महा पद के भागी हैं उसी से बेअन्धता मिश्र असुरों के लायक नरक के योग्य हैं ऐसा त्रिकाल दर्शी वेद भगवान् खुद कह रहा है ३

चौथे का यह अर्थ है कि वह एक तत्व सनातन धर्म अकथ्य है मूर्खों के मन में नही आता वह शास्त्र ज्ञान हीन जड है उनके देव अपने को मानने वाले पण्डित भी हठ से नही समझते (पूर्व मर्पत्) सब नास्तिकों से पहले का है इसी से सनातन पुरातन आदि शब्दों से कहा जाता है वह दौडती हुई बुद्धि के भीतर नही आता उसी धर्म भगवान् के आश्रय सभी वाय्वादि अपना २ काम कर रहे हैं उसी के लिये ब्रह्मादि कर्म और वायु लोगाश्चासादि द्वारा काम करता है ऐसा वेद भगवान् खुद परमात्मा निर्विशेष शुद्ध द्वितीय पुरातन धर्म की स्तुति करता नास्तिक मत के खण्डन से अशुद्धि हटाता निर्विशेष शुद्धि द्वितीय को दृढ करता चला जाता है ४

पंचमें का अर्थ है कि वह मयामत नास्तिक गिर जाता है जीवठ्याप्यरवादि सिद्ध नही हो सकते वह सनातन है यह नया है ३६ वर्ष से चला है नास्तिक कुल हो करीब २६ सौ वर्ष से पहले न थे, हां यवन त्रेता में भी रघु के साथ श्री रामचन्द्र जी सें कई पीढ़ी पहले लड़ाई किये कृष्ण के भी पीछे काल यवन दौड़ा ऐसी हिष्ट्रीपुरातन सेवह पहले भी थे मगर इनका उस वकत धर्म कुछ और न था मुहम्मद धर्म भी तो १८ सौ वर्ष करीब का है बस यह नास्तिक तो सभ से पीछे ३६ वर्ष के आयु के सभ से बाहिर हैं सनातन निर्विशेष शुद्धधा द्वितीयहीसभ शास्त्रों के भीतर है इस मन्त्र का पहले भी समीक्षार्थ लिख चुके हैं और आगे मन्त्रों का अर्थ प्रायः बीच में ही लिखा है ॥

॥ इति ॥

इति श्री शोपनिषदो हरिदत्त शर्म्म विर चितामय
पुद्गिनी अनेकार्थ टीका समाप्ति मगात् निवेदक
हरिदत्त शर्म्मा त्रिवेदी